बाल विज्ञान पत्रिका जुलाई 2014

चकमक

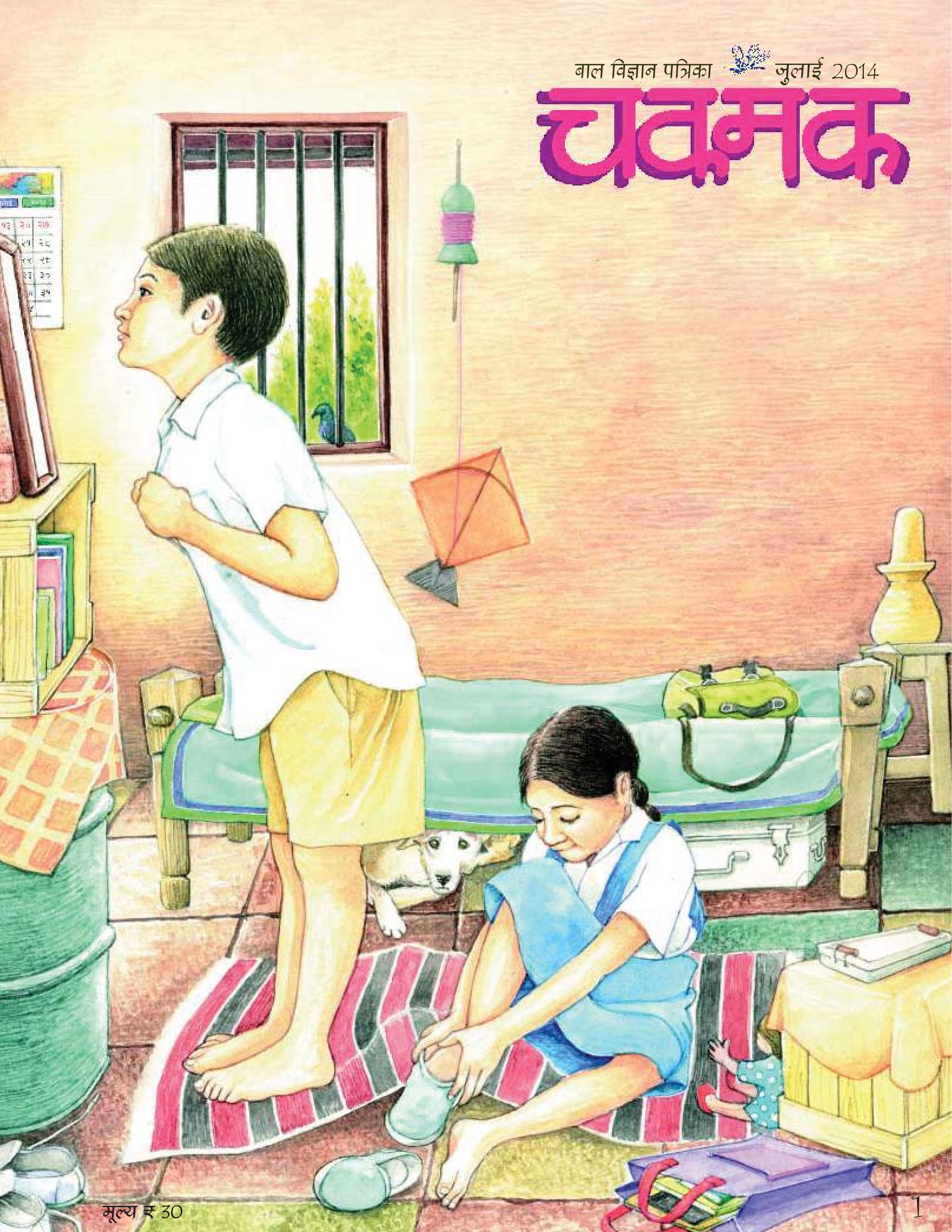

मूल्य ₹ 30

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 334 जुलाई 2014

तितली गई स्कूल

बड़े सबेरे बच्चे जाते हैं
अपने स्कूल।
पीले फूल पे पीली तितली
बैठी जैसे फूल।

उड़ी अचानक तितली
जैसे संग उड़ा हो फूल-
बच्चों ने देखा, फिर सोचा
उनसे हो गई भूल।

फूल वहीं रह गया
अकेली तितली गई स्कूल।

- ध्रुव शुक्ल

इस अंक में

4 दोस्ती
6 बोली रंगोली
8 एक था हाजी एक था नाजी
10 बिजली के झपकने के बीच
13 इशारा यह भाषा ही तो है...
14 आसमान की सफाई
16 मेरा पन्ना
19 पंछी का काम पहलवान से भी ना होय
22 मैरीकॉम की कहानी
25 ताड़ का पेड़
26 मीठा सन्तरा
28 मेरा नाम अब्दुल है
29 माथापच्ची
30 अमिनिचेची की बकरी
33 ताला सुधारनेवाला
34 दाढ़ीवाले किसान
38 दर्पण की दुनिया
41 बोली रंगोली
42 मैंने जब पेंटिंग चालू की ...
43 चित्रपहेली
44 भट्टा

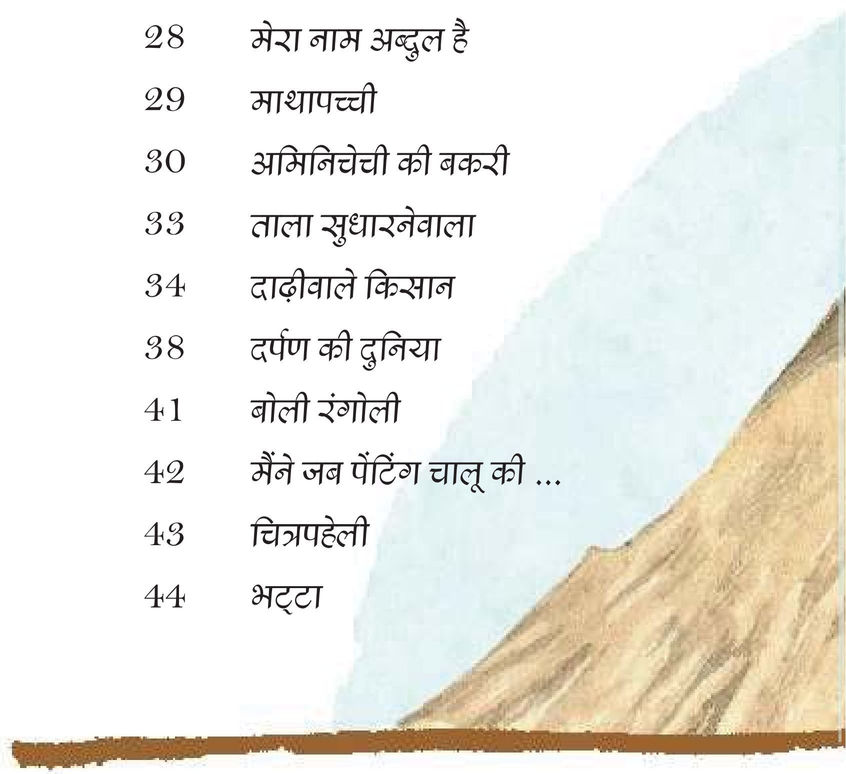

हाशिए के चित्र
कनक व शिवांगी

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

उप सम्पादक
मिताली अहीर

आवरण चित्र
दिलीप चिंचालकर

सम्पादकीय सलाहकार
रेक्स डी रोज़ारियो

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

4 एक बार फिर मैं अपने कमरे में बैठी खिड़की से
बाहर देख रही हूँ।
हर साल इस दिन ऐसा ही होता है।

19 फाख्ता ही होती है कि
हवा ज़रा कुनकुनी हुई नहीं
कि अण्डे देने की जल्दबाज़ी
कर बैठती है।

33
अड़ियल तालों को
खोलने का हुनर जानते हो
चाबी बनाकर मुस्कराए हो कभी?
तुमने कभी खोला है
किसी अँधेरे का ताला?

10
एक सामूहिक कब्र से
उन्हें निकाला गया तब
उनकी जैकिट की
अन्दर की जेब में
कविताओं से
भरी वह नोटबुक
बरामद हुई।

6-7-41
पग पग पग पग करते करते
पूरे पहाड़ पे चढ़ती है
एक तरफ से बढ़ती है और
एक तरफ से घटती है

- गुलज़ार

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

वितरण
झनकराम साहू

विशेष सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क

एक प्रतिः	30.00	(व्यक्तिगत)
	50.00	(संस्थागत)
वार्षिकः	300.00	(व्यक्तिगत)
	500.00	(संस्थागत)
तीन सालः	800.00	(व्यक्तिगत)
	1350.00	(संस्थागत)
आजीवनः	4000.00	(व्यक्तिगत)
	6000.00	(संस्थागत)

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर,
भोपाल, म.प्र. 462 016
फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108
e mail - chakmak@eklavya.in
e mail - circulation@eklavya.in
www.chakmak.eklavya.in
www.eklavya.in

बोली गोली

पहले पाँच

पग पग पग पग करते-करते
पूरे पहाड़ पे चढ़ती है
एक तरफ से बढ़ती है और
एक तरफ से घटती है

- गुलज़ार

इलांगो, ग्यारह साल, शिलांग, मेघालय

दोस्तो, शुक्रिया! इतने मन से इस कॉलम में भागीदारी के लिए। इस बार हमें बेहद खूबसूरत चित्र मिले। खासतौर पर शिलांग के सत्तर चित्र। गुड़गाँव के स्कूल और संस्थाएँ भी बच्चों के चित्र बड़े पैमाने पर भेजती हैं। डीपीएस पटना, पूना, लुधियाना और कोयम्बटूर के ढेरों चित्र हर महीने हमें मिलते हैं।

गुलजार साब के पसन्दीदा पाँच चित्र यहाँ पेश हैं। इन पाँचों चित्रकारों को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता मिलेगी। दस चित्र और भी हैं जो बहुत सधे हैं। इन्हें तुम पेज 41 पर देख सकते हो।

दिशा खोइया, नवीं, केन्द्रीय विद्यालय क्र 2, भोपाल

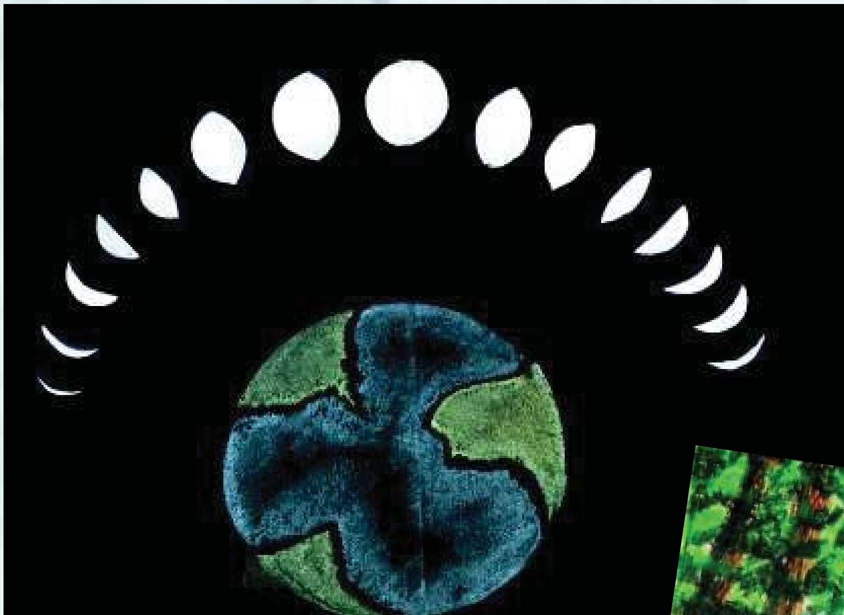

सिद्धान्त राज वर्मा,
किलकारी बालभवन, पटना

अगस्त की कविता है ..

कलाई पर इसे बाँधा
मगर फिर भी ये उड़ता है
बदल जाता है ये लेकिन
न रुकता है न मुड़ता है
- गुलज़ार

रिशिका रामपाल,
चौथी, लाख्या,
गुड़गाँव

समर्पिता डे,
चौथी, शिलांग, मेघालय

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 14 जुलाई तक मिल जाए। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना। हमारा पता है -

चकमक, एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल -16 (फोन - 09425010115)
www.chakmak.eklavya.in

दोस्ती

एनी मोर

14 साल, न्यूफाउण्डलैंड

आज फिर सितम्बर की पहली तारीख है। एक बार फिर मैं अपने कमरे में बैठी खिड़की से बाहर देख रही हूँ। हर साल इस दिन ऐसा ही होता है। मैं कुर्सी से पीठ टिकाए खिड़की से टकराती तेज़ बारिश की आवाज़ें सुन रही हूँ। और बहुत पीछे रह गए अपने स्कूल के दिनों में पहुँच जाती हूँ। और फिर उस गुरुवार में भी ...

वो छुट्टी का दिन था। हम तीन सहेलियों ने शहर के बाहर समुद्र किनारे अपना दिन बिताने का प्लान बनाया था। सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। तय हुआ था कि हम सब जीन के घर मिलेंगे। जीन के पापा ने हमें एक दिन के लिए अपनी कार दे दी थी।

बुधवार को स्कूल से आते वक्त जीन बोली, “अरे सुनो तो आज क्या मज़ेदार हुआ! इतिहास के पीरियड के बाद लूसी मेरे पास आई और बोली कि क्या कल मैं भी तुम्हारे साथ चल सकती हूँ? जब उसने पूछा तो मुझे ख्याल आया कि हाँ खाना बनाना, बरतन धोना जैसे काम तो होंगे ही। सो मैंने कह दिया, बिलकुल आ जाओ।”

शायद तुम सोचोगे कि यह लूसी कौन? वैसे लूसी जैसे लोग हर स्कूल में मिल जाते हैं – छोटे, मोटे, चश्मा पहने, अजीब-से दिखनेवाले, मरियल बालोंवाले। सारा स्कूल उन पर हँसता है। और वो हमेशा सबके आसपास बने रहने, चिपके रहने की कोशिश में रहते हैं।

अगले दिन हम सब जीन के घर पहुँचे और वहाँ से समुद्र की ओर चल दिए। लूसी हमारे लिए खाना बनाने में लग गई थी इसलिए हम सब सीधा तैरने चले गए। खाने के समय तक हम लौट आए थे। अब जो चीज़ तारीफ लायक है उसकी तारीफ तो की ही जानी चाहिए ना! लूसी ने बहुत ही स्वादिष्ट खाना बनाया था। तैरकर हम इतना थक गए थे कि खाना खाते ही हमें नींद आने लगी। जब तक लूसी बरतन वगैरह समेटती हम जीन की कार में सोने चले गए।

शंकर्स वीकली में 1951 से 1954 के बीच छपी 56 देशों के बच्चों की कुछ उम्दा रचनाओं को 1956 में शिक्षा विभाग ने *चाइल्ड राइटिंग* नाम से प्रकाशित किया। इस प्रयास को सलाम! इसी गुच्छे की कुछ रचनाएँ अगले अंकों में पढ़ेंगे। कार्टूनिस्ट शंकर (पिल्लै) को याद करने का इससे बेहतर तरीका और क्या होगा!

पता नहीं मैं कितनी देर तक सोती रही। अचानक झटके-से मेरी नींद टूटी। मौसम अचानक बहुत बदल गया था। लूसी समुद्र के पास खड़ी चीख रही थी। मुझे कुछ पल्ले नहीं पड़ा कि वो कहना क्या चाह रही है। मैंने फटाफट बाकियों को उठाया और हम सब समुद्र की ओर दौड़ पड़े। लूसी को हमने किसी तरह शान्त किया तो वो बोली कि जीन बिलकुल नहीं सोई थी। उसने कहा कि वो तैरने जाएगी। मैंने कहा भी कि तूफान आने जैसा लग रहा है। पर वो मानी नहीं और कुछ दूर दिख रही एक पुरानी नाव की ओर तैरने लगी। और फिर वो उस नाव को खेते हुए समुद्र के भीतर चली गई। और अब वो चीख-चीखकर मदद माँग रही है। हमने उससे कहा कि वो शान्त बनी रहे। हम मदद के लिए कुछ सोचते हैं।

हमें एक बार फिर लूसी का ख्याल आया। हमने उससे पूछा कि क्या वो तैरना जानती है। उसने कहा, "हाँ, पर अच्छे से नहीं।" हमने उससे कहा कि क्यों नहीं वो जीन को बचा लाती! हमारे इतना कहते ही वो पानी में कूद गई। कुछ देर उसने तूफानी लहरों का जमकर मुकाबला किया। हम किनारे पर खड़े उसे और आगे बढ़ने का हौंसला देते रहे। अचानक हमें लगा कि वो कुछ मुश्किल में है। और आगे नहीं बढ़ पा रही थी। लग रहा था जैसे उसे साँस लेने में बहुत तकलीफ हो रही थी। वो ज़ोर-ज़ोर से पानी छपकाने लगी। और फिर अचानक जैसे सब शान्त हो गया।

लूसी के गायब होने के कुछ देर बाद ही हमें ढूँढ निकाला गया। और जीन समेत हम सब सुरक्षित घर आ गए।

अगले दिन जब लूसी को दफन किया जा रहा था तो उसकी माँ हमारे पास आईं। और बोलीं, "मैं तुम सब को यहाँ देखकर बहुत खुश हूँ। तुम लोग हमेशा से लूसी के दोस्त रहे हो। वो हमेशा तुम्हारी बहुत तारीफ करती थी। कहती थी कि तुम उसका बहुत ख्याल रखते हो। और उस दिन तो वो कितनी खुश थी जब तुमने उससे कहा था कि तुम चाहते हो कि वो भी तुम्हारे साथ पिकनिक पर चले। पर जीन बेटे, मुझे एक बात समझ नहीं आती। लूसी तुम्हें बचाने क्यों गई? उसे तो पता था कि इससे कुछ होना-जाना नहीं है। वो जब 12 साल की थी उसे एक अजीब बीमारी हो गई थी। उसे पता था कि पानी में जाते ही उसके हाथ-पैर अकड़ जाएँगे और उसी वक्त उसकी मौत हो जाएगी।"

मैं अकसर सोचती हूँ कि कभी उसकी माँ को पता चला तो...

चित्रः तापोशी घोषाल

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

बड़े दिनों बाद नाजी साहब को दफ्तर से छुट्टी मिली थी और वे पूरी तरह आराम करने के मूड में थे। टेबल पर कॉफी का मग था, गोद में अखबार था और टीवी पर क्रिकेट मैच आ रहा था।

अचानक आठवीं में पढ़नेवाला नाजी साहब का बेटा कमरे में आया और बोला, "पापा! दो-चार सवाल बता दोगे? मम्मी हैं नहीं और मुझे होमवर्क कम्पलीट करना है!"

नाजी साहब बोले, "हाँ हाँ, ज़रूर ज़रूर। पूछो बेटा क्या पूछना है।"

बेटा बोला, "तो ये बताइए कि दुनिया का सबसे लम्बा आदमी कौन है?"

"दुनिया का सबसे लम्बा आदमी पहले तो चीन का था कोई। आजकल पता नहीं कौन है। एक बार तो इण्डिया का भी कोई रह चुका है। बल्कि एक तो हमारे गाँव में भी था! अब.... देख लो!!" नाजी साहब ने बताया।

फिर बेटे ने पूछा, "अच्छा ये बताइए कि अरुणाचल प्रदेश की राजधानी क्या है?"

"अरुणाचल प्रदेश की? अरे! तुम आठवीं क्लास में आ गए और तुम्हें ये भी पता नहीं कि अरुणाचल प्रदेश की राजधानी क्या है? लाओ ज़रा अपनी एटलस! अभी बताते हैं! नहीं है? कैसे नहीं है? लाए तो थे हम। देखो किताबों के बीच ही कहीं पड़ी होगी। अपनी चीज़ें करीने से रखनी चाहिए। ये नहीं कि स्कूल से आए और बस्ता कहीं फेंका, जूते कहीं! अच्छा ऐसा करो, फिलहाल तुम्हारे किसी दोस्त के पास एटलस हो तो उससे फोन करके पूछ लो!" नाजी साहब ने कहा।

"अच्छा ये बताइए," थोड़ी देर बाद बेटे ने पूछा, "कंचनजंघा कहाँ है?"

नाजी साहब अपने हॉलिडे मूड के सत्यानास हो जाने से दुखी थे। थके सुर में बोले, "अब यार ऐसी चीज़ें तुम्हारी मम्मी ही उठाकर रखती हैं कहीं। वो आएँ तो तुम उन्हीं से पूछ लेना।"

बेटे ने फिर कुछ नहीं पूछा।

नाजी साहब बोले, "क्या हुआ, तुम चुप क्यों हो गए?"

बेटा बोला, "अब मुझे कुछ नहीं पूछना।"

इस पर नाजी साहब बोले, "पूछो पूछो... पूछोगे नहीं तो सीखोगे कैसे?" चकमक

नाजी किसी कार्यक्रम में भाग लेने बनारस गए।

बनारस में कार्यक्रम के बाद नाजी साड़ी खरीदने के लिए निकले तो साड़ियों की कीमत सुनकर उनके तो होश ही उड़ गए। कोई दो हज़ार तो कोई तीन हज़ार!! नाजी की जेब में तो इतने पैसे ही नहीं थे।

अचानक नाजी की नज़र एक छोटे-से पटिए पर पड़ी जो एक दुकान के सामने रखा हुआ था। उस पर लिखा था, "बनारसी साड़ी - पचास रुपए, कांजीवरम - सौ रुपए, प्योर सिल्क - अस्सी रुपए, शिफॉन साड़ी - चालीस रुपए।"

नाजी धड़धड़ाते हुए दुकान के भीतर घुसे और बोले, "भाईसाहब नमस्ते! जल्दी से दो बनारसी साड़ी, दो कांजीवरम, दो प्योर सिल्क की और चार शिफॉन की साड़ियाँ पैक करवा दीजिए।

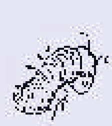

रंग-वंग की परवाह मत कीजिए, कोई-सा भी चलेगा। हाँ, हलका रंग हो तो ज़्यादा अच्छा है और सब अलग-अलग हों सब एक जैसी न हों!"

दुकानदार चुपचाप खड़ा नाजी का मुँह देखता रहा।

नाजी ने कहा, "जल्दी कीजिए भाई, हमारी ट्रेन का टाइम हो रहा है।"

दुकानदार बोला, "दुकान में आने से पहले आपने बाहर लगा बोर्ड नहीं पढ़ा?"

नाजी बोले, "हाँ, नहीं, मतलब क्या हुआ? बोर्ड में कोई खास बात है क्या?"

"एक मिनट ज़रा बाहर जाकर हमारे बोर्ड को अच्छी तरह पढ़कर आ जाइए! प्लीज़!!"

नाजी ने बाहर जाकर बोर्ड को अच्छी तरह पढ़ा।

बोर्ड पर लिखा था –

हाजी ड्राइक्लीनर्स

चित्रः अतनु राय

नाजी मनोचिकित्सक के पास गए। मनोचिकित्सक ने पूछा, "क्या प्रॉब्लम है?"

नाजी ने कहा, "हमें कोई प्रॉब्लम नहीं है। हम तो बादशाह अकबर हैं। जिले सुब्हानी! शहंशाहे आलम! महाबली!! हमें क्या प्रॉब्लम हो सकती है!"

"तो फिर?" मनोचिकित्सक ने पूछा।

"प्रॉब्लम हमारी वाइफ को है।"

"उन्हें क्या हुआ है?" मनोचिकित्सक ने पूछा।

"वह समझती हैं कि वह श्रीमती नाजी हैं!"

बिजली के झपकने के बीच

कुमार अम्बुज

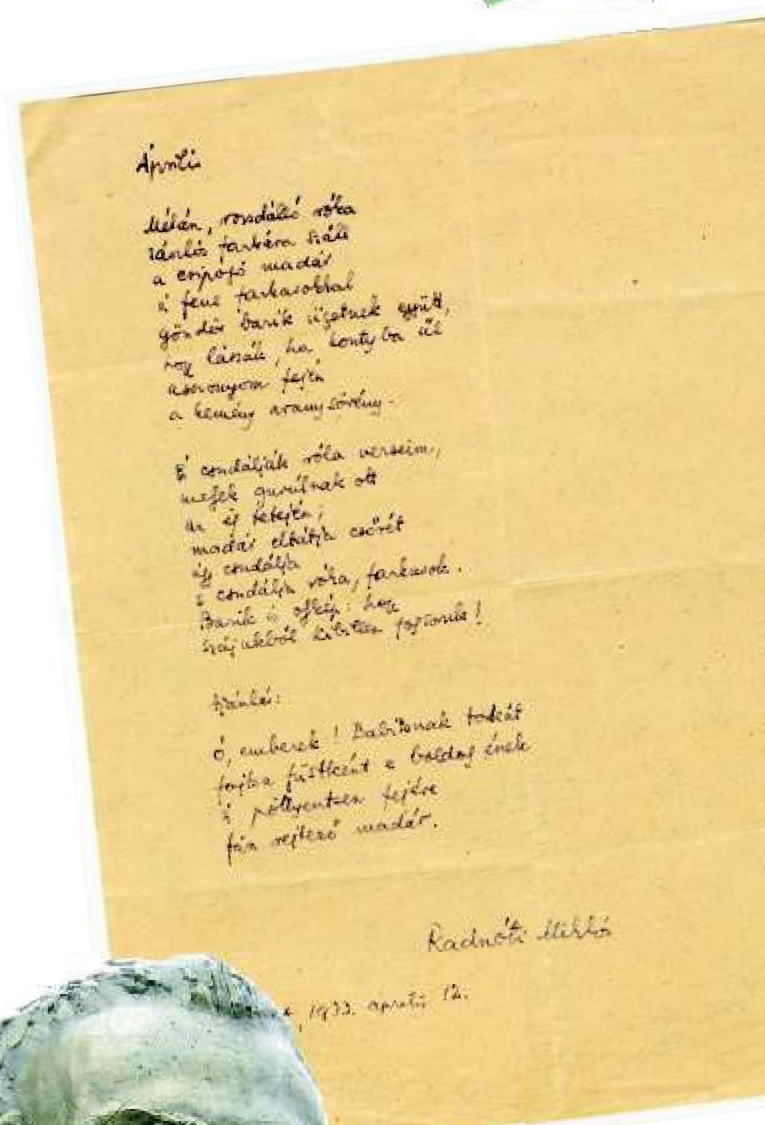

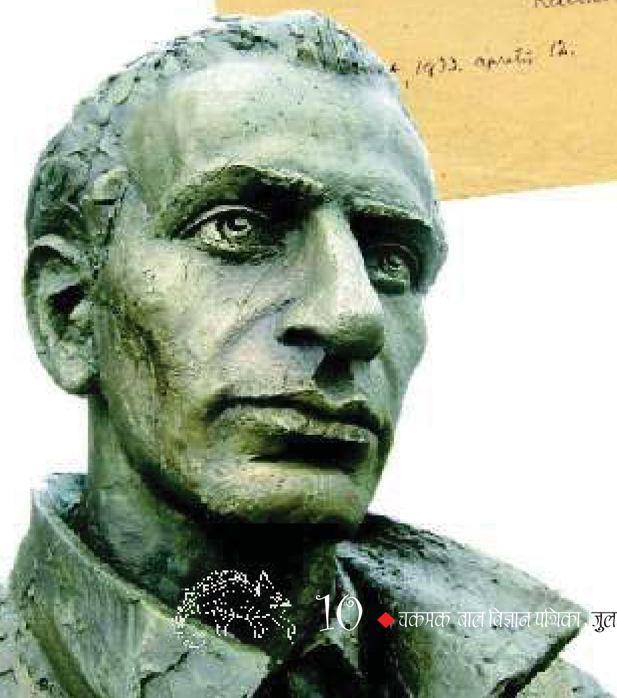

एडोल्फ हिटलर के नाम से सब परिचित होंगे। बीसवीं सदी के चौथे-पाँचवें दशक में जर्मनी के शासक और तानाशाह के रूप में हिटलर (कु)ख्यात है। उसने नस्लीय घृणा को फैलाया। और यहूदियों को निर्वासित किया। यातना शिविरों (कॉन्सनट्रेशन कैम्प) में रखकर बड़ी संख्या में उन यहूदियों को मार डालने का कलंक हिटलर और उसकी नाजी सेना पर है। 1945 में जब दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त हुआ, तब बचे-खुचे, थोड़े-बहुत यहूदियों को मुक्ति मिली। हिटलर सहित, नाजी सेना के कुछ अधिकारियों ने आत्महत्या कर ली। यह पूरा किस्सा अलग है।

बहरहाल, यातना-शिविरों में असीम कठिनाइयाँ, भुखमरी, आतंक और घनघोर अमानवीय परिस्थितियाँ थीं। पर इन सबके बावजूद वहाँ अनेक यहूदी ऐसे रहे जिन्होंने उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा। उन्होंने जीने की इच्छाशक्ति के साथ उन मुश्किलों का सामना किया। जबकि रोज़-रोज़ बच्चों, बूढ़ों, स्त्रियों और जवान लोगों की भी सरेआम हत्याएँ की जा रही थीं। गैस चैम्बर में मार डालने के अलावा, सामूहिक रूप से उन्हें लगभग ज़िन्दा ही जलाया जा रहा था। नस्ल, धर्म या जाति के आधार पर घृणा फैलाने का परिणाम कितना खतरनाक और मानव-सभ्यता के लिए किस कदर शर्म का विषय हो सकता है, हिटलर का वह दौर आज उदाहरण के रूप में सामने है।

एक यातना-शिविर में हंगरी के युवा कवि मिक्लोश राद्नोती भी थे। उन्हें नाजी सेना ने यातनाएँ देकर, उनसे कठोर श्रम कराते हुए महज़ 35 साल की उम्र में गोली मार दी। मिक्लोश राद्नोती जानते थे कि उनका ऐसा अन्त हो सकता है। लेकिन वे एक स्वप्नदर्शी कवि थे। उम्मीद, करुणा और जिजीविषा से भरपूर। इसलिए दारुण स्थितियों के बीच, किसी तरह छिपाकर रखी गई एक नोटबुक में उन्होंने अपने उस भीषण समय के बारे में कविताएँ लिखना जारी रखा। जबकि वे जानते थे कि इन कविताओं का प्रकाशन तो दूर, किसी दूसरे व्यक्ति तक पहुँचना भी लगभग असम्भव है। शायद उनके पास प्रतिरोध का, अपने समय की गवाही लिखने का यही एक तरीका मुमकिन रह गया था। नाजी सेना की पराजय के बाद एक सामूहिक कब्र से उनकी लाश निकाली गई। उनकी जैकिट की अन्दर की जेब में कविताओं से भरी वह नोटबुक बरामद हुई। और इस तरह वे कविताएँ संसार के सामने आ सकीं। उनकी कविताओं की कुछ पंक्तियाँ यहाँ इसलिए दी जा रही हैं कि हम जान सकें कविता का सौन्दर्य एवं उसकी ताकत के कितने रूप हो सकते हैं। जैसे—

सभी चित्रः इन्टरनेट

जब जेल में बिजली झपकती है
तो अन्दर सारे कैदी और बाहर पहरा देते सन्तरी
जानते हैं कि कैसे उस वक्त एक ही आदमी के शरीर में
सारी बिजली एक साथ दौड़ रही है

ये पंक्तियाँ न केवल उस आतंक और विनाशशीलता का परिचय देती हैं बल्कि कविता की शक्ति भी इनमें है। वह बिजली के झपकने के क्षणभर के दृश्य के पीछे का षड़यंत्र और उसके कारण को हृदयविदारक ढंग से सामने रख देती हैं – कि जब एक बल्ब झपकता है तो उस समय की उस बिजली का कितना अमानवीय इस्तेमाल किया जा रहा है। यानी बिजली के उस झपकने के बीच एक मनुष्य की जान ले ली जाती है। एक पल के दसवें हिस्से का अँधेरा, एक मनुष्य को, पूरी मनुष्यता को निगल जाता है। उस एक पल के अँधेरे में जैसे एक पूरी शताब्दी का अँधेरा सिमट आता है। वहाँ उपस्थित लोग इस बात को समझ रहे हैं लेकिन बेबस हैं। उन देखने-समझनेवालों में से किसी भी क्षण, कोई भी आदमी शिकार हो सकता है। यह कविता एक तरह से, उस यातना को इतिहास की तरह लिख देती है। गहरी संवेदना, मार्मिकता के साथ, आतंक को उधेड़ते हुए। हालाँकि, फिर एक कविता में वे अपनी उम्मीद को भी इस तरह दर्ज करते हैं–

मेरे पास कभी कुछ नहीं था और न आगे कभी होगा
जाओ और ज़रा एक लम्हे के लिए मेरी ज़िन्दगी की
इस दौलत पर विचार करो
यह दुनिया फिर से बनाई जाएगी मेरी कविताओं पर रोक लगने दो
मेरी आवाज़ हर नई दीवार की नींव के पास सुनी जाएगी

यहाँ एक असहाय, दुखी और निर्धन व्यक्ति के रूप में कवि के पास भले ही कोई सम्पत्ति नहीं है लेकिन उसकी मेधा, बुद्धि और रचनात्मकता की ताकत ही जैसे असली दौलत है। आशा के साथ यह विश्वास भी यहाँ प्रकट है कि एक दिन इस तानाशाही का, इस नरसंहार का अन्त होगा और जो लोग मारे जा रहे हैं, वे नींव के पत्थर की तरह काम आएँगे। और एक नई दुनिया, मानवीय और प्रेमिल संसार का निर्माण होगा। संसार का हर बेहतरीन कवि दुनिया की कालिख को हमेशा आशा के "डस्टर" से पोंछता रहता है।

इतना ही नहीं, मिक्लोश राद्नोती अन्यथा बहुत अच्छे, हृदय में बस जानेवाले बिम्बों का निर्माण भी करते हैं। यह उनकी काव्यात्मक शक्ति और कल्पनाशीलता का उदाहरण है–

भेड़ चरानेवाली एक छोटी लड़की
झील में उतरकर
पानी को थरथराती है
और थरथराती हुई भेड़ें
पानी में इकट्ठा होती हुई
झुककर बादलों से पानी पीती हैं

यहाँ उपमा के सर्वथा नए प्रयोग हैं – कि जब पानी को थरथरा दिया गया है तो ज़ाहिर है कि उसमें भेड़ों की परछाईं भी थरथराती हुई दिखेगी। ऊपर आसमान में जो बादल हैं, उनकी परछाईं झील में गिर रही है तो ऐसा लगता है मानो भेड़ें उन बादलों से ही सीधे पानी पी रही हैं।

इस तरह एक कवि तमाम स्थितियों में रहकर मनुष्य की गरिमा, मनुष्य के श्रम और उसके स्वप्नों को ही नहीं रचता बल्कि मुश्किल परिस्थितियों के बीच अपना विरोध भी दर्ज करता रह सकता है। मिक्लोश राद्नोती को भले ही तानाशाही और फासीवादी शक्तियों ने युवावस्था में ही मार डाला लेकिन उनकी कविता ने उन्हें स्मरणीय और अमर बना दिया।

एक कहानी

ऊँट जोड़

चित्रः कनक

एक आदमी अपने तीन बेटों के लिए 17 ऊँट छोड़ गया। पिता के गुज़र जाने के बाद बेटों ने वसीयत खोली। उसमें लिखा था, “बड़े बेटे को 17 में से आधे ऊँट दिए जाएँ। बीचवाले को 17 का एक तिहाई (1/3) और सबसे छोटे बेटे को 17 का 1/9वाँ हिस्सा दिया जाए।”

अब मुश्किल यह थी कि 17 ऊँटों का आधा या उनका 1/3वाँ और 1/9वाँ हिस्सा कैसे किया जाए! इस पर तीनों भाई लगे लड़ने। पर फिर ख्याल आया क्यों न किसी सूझबूझवाले व्यक्ति के पास जाया जाए!

तो वे गए ऐसे ही एक व्यक्ति के पास। उसने बड़े इत्मीनान से वसीयत के बारे में सुना। कुछ सोचा और फिर अपना एक ऊँट ले आया। उसको मिलाने के बाद अब कुल 18 ऊँट हो गए थे।

अब उसने वसीयत पढ़नी शुरू की। 18 का आधा हुआ 9 – तो उसने बड़े बेटे को 9 ऊँट दे दिए। 18 का एक-तिहाई (1/3) हुआ 6 – तो उसने 6 ऊँट दूसरे नम्बर के बेटे को दे दिए। 18 का 1/9 होता है 2, तो उसने सबसे छोटे बेटे को 2 ऊँट दे दिए।

तीनों बेटों को मिले ऊँटों को जोड़ा जाए तो 9+6+2 = 17 बनाता है। और बचा एक ऊँट उसके पास ही रहा।

इशारा यह भाषा ही तो है...

इन्द्राणी रॉय

मेरे बचपन की बात है। जब इतने सारे टी. वी. चैनल नहीं हुआ करते थे। बस एक दूरदर्शन ही था। हम इसके सारे कार्यक्रम बड़े चाव से देखते थे, खासकर रविवार को। रविवार दोपहर एक समाचार प्रसारित होता था। इसमें समाचार पढ़े जाने के साथ-साथ एक और उद्घोषक अपने हाथों से वही समाचार बताता था। ये बधिरों के लिए खास समाचार होते थे। तब मुझे लगता था कि मुँह से बोले गए शब्दों का ही हाथों से रूपांतरण किया जा रहा है।

उससे कई साल बाद की बात है। मैंने कुछ लड़कों को देखा। वे कॉलेज में पढ़नेवाले लग रहे थे। वे सड़क पर चलते-चलते मज़े से गप्पें लड़ा रहे थे। हाँ, उनकी बातों में शब्द नहीं बोले जा रहे थे, बस हाथों का इस्तेमाल हो रहा था। तब मुझे समझ आया कि हाथों से किए जा रहे इशारे बोलनेवाली भाषा की सिर्फ कॉपी नहीं है। यह बोलनेवाली भाषा जैसी ही पूरी भाषा है।

किस्मत से कुछ दिन बाद ही एक कॉन्फ्रेंस में इस बारे में मालूम हुआ। हाथ के इशारों की भाषा यानी साइन लैंग्वेज या संकेतों की भाषा। हिन्दी, बुन्देली, अँग्रेज़ी, स्वाहिली की तरह साइन लैंग्वेज का भी अपना व्याकरण है। इन भाषाओं की तरह यह भी एक स्वाभाविक भाषा है (natural language) कृत्रिम (artifical language) नहीं। आँखों से किए इशारे या हाथ या सिर हिलाने भर से संकेत भाषा नहीं बनती। न ही बोलनेवाली भाषाओं का अनुकरण कर बनाए शब्द और वाक्य संकेत भाषा है। ऐसी भाषा तो कृत्रिम भाषा होगी। जहाँ कहीं भी न बोल पानेवाले लोग होंगे वहाँ साइन लैंग्वेज पैदा होती है। इस भाषा को जाननेवाले इस भाषा में कहानियाँ सुना सकते हैं, रोज़मर्रा की बातें कर सकते हैं। यानी वो सारी चीज़ें जो दूसरी भाषाओं में की जा सकती हैं, इस भाषा में भी हो सकती हैं।

मूक-बधिर बच्चे दूसरी भाषाएँ बोलनेवाले बच्चों की ही तरह साइन लैंग्वेज सीखते हैं। छोटे बच्चे जिस तरह से ब-ब-ब, ग-ग-ग बोली निकालते हैं उसी तरह मूक बच्चे भी हाथों से ऐसी बोली बोलते हैं। जब थोड़े बड़े होकर बच्चे खुद ही से बातें करते हैं और बातें करते-करते सो जाते हैं वैसे ही मूक-बधिर बच्चे भी साइन लैंग्वेज में खुद से बातें करते हैं। दूसरे बच्चों की तरह वे भी खुद से ही बातें करते-करते सो जाते हैं।

दुनिया भर में कई सारी संकेत भाषाएँ हैं और ये सब एक-दूसरे से अलग हैं। जैसे अमरीकी संकेत भाषा में पेड़ बताने के लिए हाथ को पेड़ की टहनी जैसे हिलाया जाता है। वहीं चीनी संकेत भाषा में हाथ से पेड़ के तने की तस्वीर बनाई जाती है। भारत में प्रचलित संकेत भाषा को इंडियन साइन लैंग्वेज कहा जाता है।

साइन लैंग्वेज बताती हैं कि भाषा के प्रयोग के लिए मुँह से आवाज़ निकालना ज़रूरी नहीं है, और न ही सुनने की क्षमता ज़रूरी है। असली बात है भाषा की क्षमता। जो हर इंसान की अन्दरूनी क्षमता है। कोई मुँह से इस क्षमता को ज़ाहिर करता है तो कोई हाथ से।

आसमान की सफाई

मोहित कटारिया

इक रोज़ मालूम है क्या हुआ
आसमान था तारों से भरा हुआ
इक आँधी ने कर दिया हमला
हर तारे को कर गई धुँधला।

मैं बोला, “मम्मी, अब क्या करूँ?
कैसे साफ पूरा आसमां करूँ?
तारों बिन आकाश ये कैसा
बिन चावल की खीर के जैसा।”

मम्मी बोलीं, “चढ़ जाओ छत पर,
फिर ये लम्बी सीढ़ी पकड़कर
लेना इक टुकड़ा बादल का फाड़
और देना आसमां की धूल झाड़।”

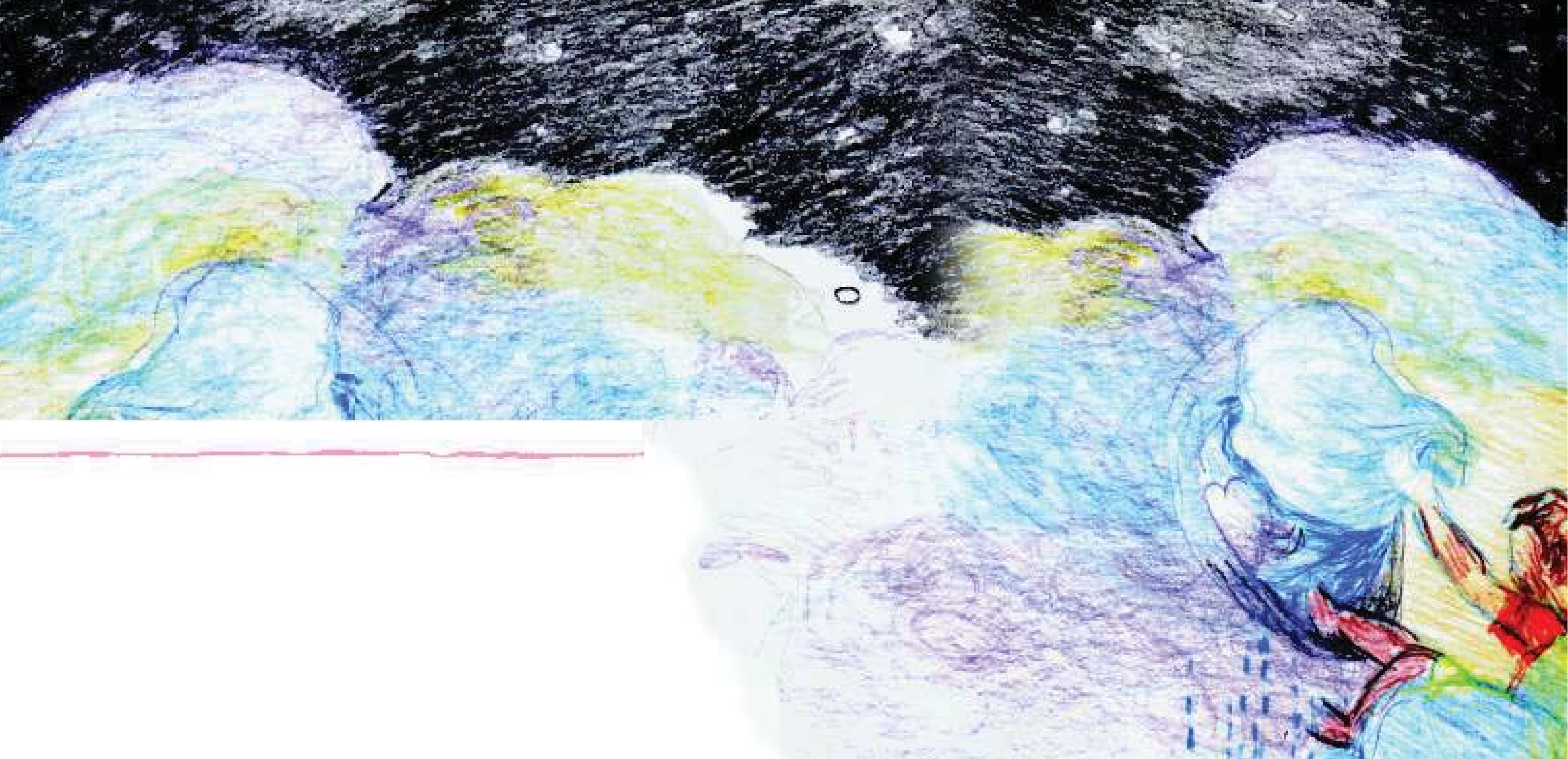

झटपट भागा, शुरू करी चढ़ाई
इक बादल से सीढ़ी टिकाई
तोड़ा बादल का टुकड़ा जो एक
उसमें हो गया बड़ा-सा छेद।

दूजे बादल ने दिया कँधा उधार
वरना छेद से मैं हो जाता पार
दोनों बादल मिलकर हो गए भारी
एकदम से कर ली बारिश की तैयारी।

बारिश का मैंने पकड़ के हाथ
छलाँग लगाई उस के साथ
बारिश ने सीधा रस्ता लेकर
छोड़ा घर की छत पर लाकर।

थोड़ी देर में रुक गई बारिश
बादल हो गए हलके-फुलके
और जितने भी धूल के कण थे
बह गए बारिश में धुल के।

चित्रः शोभा घारे

मेरा पन्ना

बरसात का एक दिन

23 जुलाई 2013 बुधवार

आज हम अपने विद्यालय में थे और हमारा सातवाँ पीरियड चल रहा था। तभी अचानक तेज़ हवा चलने लगी। मेरी कक्षा के सभी छात्र शोर करने लगे। देखते ही देखते बहुत तेज़ बारिश होने लगी। फिर लगभग एक घण्टे के बाद बारिश बन्द हुई। हमें छुट्टी हो गई थी। पर हमारी स्कूल बस नहीं आई थी। मैं और मेरी बस के मित्र अपनी बस के बच्चों को एक स्थान पर इकट्ठा करने लगे। कई बच्चे बारिश के पानी में छप-छप करके खेलने लगे। फिर हमारी बस आ गई और हम घर की तरफ चल पड़े। रास्ते में हमने देखा कि सड़कों पर बहुत सारा पानी भरा हुआ था। लोगों की दुकानों तथा घरों में भी पानी भरा हुआ था। लोगों का सामान पानी में तैर रहा था। सड़क पर लोगों के वाहन बन्द हो रहे थे। जब हम दण्डीस्वामी रोड पर पहुँचे तो हमने देखा कि वहाँ पर बारिश की वजह से एक खम्भा गिरा हुआ था। उसके बाद हम एक पुल के नीचे पहुँचे। वहाँ पर लोगों की कमर तक पानी था। पानी में लोगों के वाहन बन्द पड़े हुए थे तथा वहाँ पर जाम लगा हुआ था। हमने देखा कि कुछ प्रेस रिपोर्टर पुल के ऊपर खड़े होकर इस दृश्य की तस्वीरें खींच रहे थे। सारी बस के बच्चे उन्हें देखकर टाटा करने लग गए तो हमारी बस अध्यापिका ने हमें ऐसा करने से मना किया लेकिन हम नहीं माने। इतने में प्रेस रिपोर्टर की हमारी तरफ नज़र पड़ी और वे हमें देखकर मुस्कराए तथा सभी ने हमारी बस की तस्वीर खींची। हमें बहुत अच्छा लगा लेकिन बारिश की वजह से लोगों को जो परेशानी हुई वह देखकर हमें बिलकुल भी अच्छा नहीं लगा।

–चित्र व आलेखः कनन जैन, पाँचवीं, डीपीएस लुधियाना, पंजाब

स्कूल

सरजी ने एक बन्दर को
बुलवाया स्कूल
सरजी ने सवाल पूछा
बन्दर गया भूल
सरजी को आया गुस्सा
मार दिया एक रूल
बन्दर को भी गुस्सा आया
तोड़ दिया हर रूल
इसी बात पर सरजी ने
दिया बन्दर को एक फूल
बन्दर को हुआ पछतावा
कि की है उसने भूल
अब गलती नहीं करेगा
रोज़ आएगा स्कूल

–आशीष कुमार, सातवीं, परिवर्तन, सिवान, बिहार

–अखिलेश, पहली, मोरगढ़ी, म. प्र.

सपनों का स्कूल

दूसरी स्कूल में जाती थी
मन से खेल नहीं पाती थी
कुछ समझ नहीं पाती थी
उलझन में ही रह जाती थी
सपना एक मैं देखती थी
जिसे सच नहीं कर सकती थी
फिर एक स्कूल ऐसा मिला
जो मेरे सपनों जैसा था
यहाँ आकर समस्या का समाधान हुआ
समझ का भी विस्तार हुआ
अब मैं मन से खेलती हूँ
अपने सपनों को सच कर सकती हूँ।

–प्रस्तुतिः रविता बैरवा, दिगन्तर स्कूल जयपुर, राजस्थान

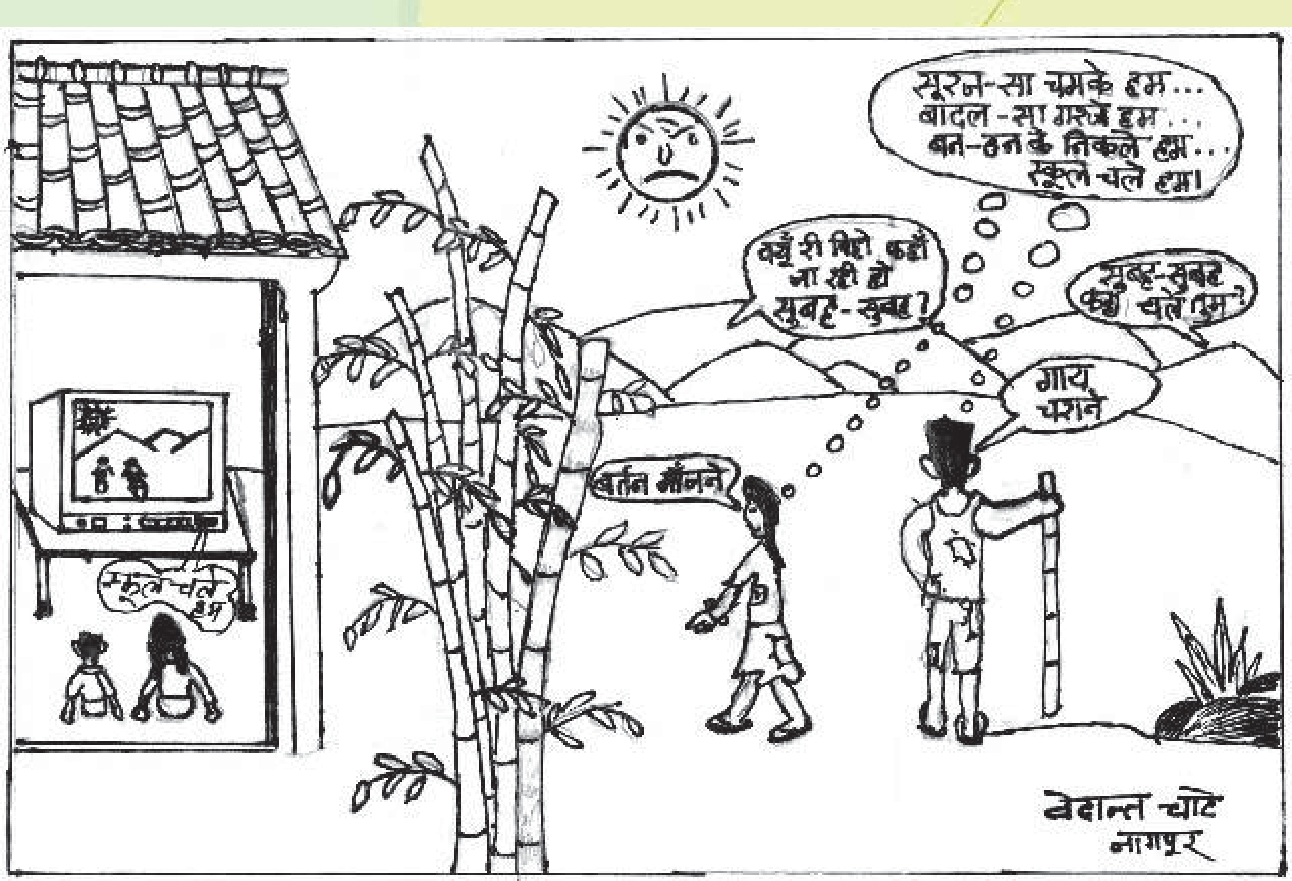

–वेदान्त चाटे, नागपुर, महाराष्ट्र

मेरा पन्ना

–शताक्षी, साढ़े पाँच वर्ष, भोपाल, म. प्र.

हिरणऔर मगरमच्छ

एक जंगल था जिसमें एक तालाब था। तालाब के अन्दर एक शरारती मगरमच्छ रहता था। मगरमच्छ का दोस्त सियार भी काफी शरारती था। दोनों मिलकर जंगल के जानवरों को अपनी बातों में फँसाकर मार डालते और फिर उसका माँस खाते थे। उसी जंगल में एक हिरण रहता था। उन्होंने हिरण को अपने जाल में फँसाकर मारने की योजना बनाई। वे एक पेड़ के नीचे बैठकर योजना बनाने लगे। सियार बोला, "जब हिरण तालाब पर पानी पीने आएगा तो मैं काँव-काँव की आवाज़ करूँगा तो तुम पानी के अन्दर से अपनी पूँछ के वार से हिरण को मार देना।" मगरमच्छ ने कहा, "ठीक है।" तो उस पेड़ की डाल पर बैठा एक कौआ सारी बातें सुन रहा था। हिरण ने एक बार कौए की जान बचाई थी। इसलिए कौए ने हिरण की मदद करने की योजना बना ली। हिरण तो सियार के आने से पहले ही पानी पीकर चला गया। और सियार आया तो सियार ने सोचा अभी हिरण तो आया नहीं है। चलो अपन पानी पीकर झाड़ी में छुप जाते हैं। सियार जैसे ही तालाब में पानी पीने घुसा तो पेड़ पर बैठा कौआ काँव-काँव कर चिल्लाने लगा। जब तक सियार को कुछ समझ आता उससे पहले ही मगरमच्छ ने काँव-काँव का संकेत मिलते ही अपनी पूँछ का ज़ोरदार वार किया। और सियार वहीं का वहीं ढेर हो गया।

–दिलराज प्रजापत, 13 वर्ष, तालड़ा, सवाई माधोपुर, राजस्थान

बारिश आई.....

बारिश आई, बारिश आई
जगह-जगह पानी लाई
इधर पानी, उधर पानी
बादलों की शानदार कहानी
रेनकोट पहनो, छाता लगाओ
पानी को छपाक-छपाक उड़ाओ
गरमा-गरम पकौड़े खाओ
बारिश का तुम मज़ा बढ़ाओ
बारिश में मोर नाचे देखो,
गर्मियों को दूर फेंको
बारिश में तुम गाना सीखो
रोज़ नई कविता लिखो

–आदित्य खाम्बेटे, तीसरी,
इन्दौर, म. प्र

चाँद

आसमान में आया चाँद
सबके मन को भाया चाँद
कितना प्यारा-प्यारा लगता
मुझे देख शरमाता चाँद

–चाँदनी, छठी, उज्जैन, म. प्र

पंछी का काम पहलवान से भी ना होय

दिलीप चिंचालकर

मलूकदासजी ने पता नहीं ऐसा क्यों कहा कि अजगर करे ना चाकरी, पंछी करे न काम...। अजगर भाई की बात बाद में करेंगे, पहले पंछी बई की। एक चिड़िया फाख्ता की।

पतझड़ के दिन थे। जाड़ा अभी पूरी तरह विदा नहीं हुआ था। बगीचा झरे हुए पत्तों से पटा पड़ा था। एक पत्ता कुछ अलग ढंग से हिल-डुल रहा था। ठीक से देखने पर पता चला कि वह पत्ता नहीं फाख्ता का चूज़ा था। इतना बड़ा कि घोंसले में न समाए और इतना छोटा कि अभी उड़ न पाए। फाख्ता ही होती है कि हवा ज़रा कुनकुनी हुई नहीं कि अण्डे देने की जल्दबाज़ी कर बैठती है। दूसरे पक्षी अभी महीना भर ठहरनेवाले थे।

अमरूद पर कुछ पत्ते अभी भी टँगे हुए थे। उसकी खाली टहनियों या छज्जों पर फाख्ता के माता-पिता बैठे होते तो दिख जाते। यानी वह बच्चा अकेला ही था। जाने कहाँ से उड़कर आया था! इसे यों ही छोड़ देना ठीक न था। फाख्ता-फाख्तन को इसकी चिन्ता होनी चाहिए थी।

दिन ऐसे ही गुज़र गया। न फाख्ताओं के हुमकने की आवाज़ सुनाई दी न चूज़े की माता-पिता को पुकार। अलबत्ता, चूज़े ने अपना ठौर बदल लिया था। अब वह घर के बाजूवाले गलियारे में सहजन के तने के पीछे जा दुबका था। वहीं सूखे पत्तों से भरा बोरा रखा था। छुपने के लिए अच्छी आड़ थी। रात-बेरात बिलौटों के गुज़रने का रास्ता जो था यह।

दूसरे दिन सुबह चूज़ा तीसरी ही जगह पर पाया गया। एक खुले कोने में, चमकदार धूप से भरे नीले आकाश के नीचे। उसकी आँखों में चमक थी। ध्यान से देखने पर लगा कि वह उतना छोटा नहीं था जितना कल लग रहा था।

दूसरे दिन सुबह चूज़ा तीसरी ही जगह पाया गया

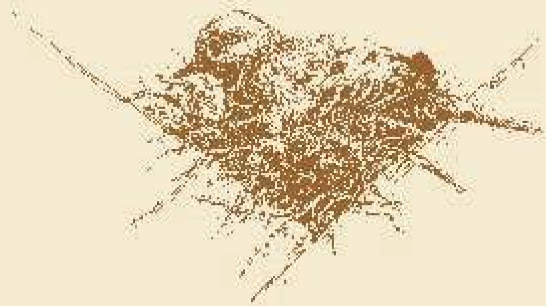

पक्षियों के कामकाज में इंसानों को दखलअन्दाज़ी नहीं करनी चाहिए यह सोच हम फिर अपने काम में लग गए। शाम होते-होते संध्या ने कहा, "आज भी फाख्ता-फाख्तन नहीं आए। गौरय्या कुंज (हमारे घर) में एक नन्हा चूज़ा भूखा-बेसहारा ठिठुरता रहे यह ठीक नहीं।"

रात से पहले चूज़े को घर ले आया गया। दस्ताने पहने (ताकि चूज़ों को इन्सानी गन्ध न लग जाए) हलके हाथों से उठाकर उसे रुई के फाहों से भरे गत्ते के एक डिब्बे में रखा गया। ड्रॉपर से दूध पीने से उसने मना कर दिया। ड्रॉपर बड़ा फूहड़ था और हमारी कोशिशें भौंडी। उसकी चोंच बहुत नाज़ुक थी और कसकर बन्द की हुई थी। या हो सकता है उसे अन्दाज़ नहीं था कि ये प्राणी उसकी भूख का इन्तज़ाम कर रहे हैं।

ऐसे तो यह बच्चा भूखा मर जाएगा। खोजबीन करने पर इंटरनेट से पता चला कि कैसे एक फाख्तन अपने चूज़ों को पालती-पोसती है। पहले तो वह हर तरह का चुग्गा अपने पेट में पचाकर पतला बनाती है (इसे कबूतर का दूध कहते हैं)। फिर चूज़ा अपनी माँ की खुली चोंच में अपनी चोंच डालता है और माँ यह दूध चूज़े की चोंच में ढकेलती है।

अण्डों से निकले चूज़ों को पहले चौबीस घण्टों तक फाख्तन हर दो घण्टों में एक मिलीलीटर दूध पिलाती है। दो दिन का हो जाने के बाद चूज़ों को हर दो घण्टों में दो मिलीलीटर। तीन दिन के चूज़ों को हर दो घण्टों में पाँच मिलीलीटर दूध। हफ्ते भर के चूज़ों को हर छह घण्टों में पन्द्रह मिलीलीटर दूध पिलाना होता है। घोंसले में हर बार दो से तीन चूज़े पलते हैं। फाख्तन को ध्यान रखना पड़ता है कि कोई चूज़ा ज़्यादा दूध न पी ले। वरना नन्हे पेटों में खटास बढ़ने लगती है।

खाने-पीने के अलावा किसी कारण चूज़ों में थकान बढ़ जाए तो उन्हें दिल का दौरा पड़ सकता है। जाड़े के आखिरी दिनों में या बारिश में मौसम ठण्डा हो जाए तो चूज़ों को गर्माहट पहुँचाना ज़रूरी होता है। इसके लिए हमें या तो तौलिए में लिपटी गर्म पानी की थैली रखनी होती है। या चालीस वॉट का बिजली का लट्टू लटकाना पड़ता है। यह भी ध्यान रखना होता है कि चूज़ों के पैर पेट के नीचे उलटे न दब जाएँ। इससे उसके पतले नाज़ुक पैर टेढ़े हो गए तो पंछी हमेशा के लिए अपाहिज हो जाते हैं। चूज़े तो चूज़े ही ठहरे कभी-कभी घोंसले का सूखा घास-कचरा भी खा लेते हैं। यह नुकसान करता है। उसे बाहर निकालने के लिए हमें ऑपरेशन करना पड़ सकता है। फाख्तन माँ पता नहीं कैसे इसका उपचार करती होगी?

मुझे दो अँग्रेज़ पक्षीशास्त्रियों का ध्यान हो आया। एक बार

फाख्तन माँ यह दूध चूज़े की चोंच में ढकेलती है।

ज़्यादा दूध पीने से नन्हें पेट में खटास बढ़ने लगती है।

चूज़ों के पतले नाज़ुक पैर टेढ़े हो गए तो पंछी हमेशा के लिए अपाहिज हो जाते हैं।

गर्मियों के दिनों में वे ब्लू टिट नाम के पक्षियों पर लगातार नज़र रखे हुए थे। उन्होंने पाया कि माँ-पिता दिन में पन्द्रह घण्टे काम करते हैं और अपने सात चूज़ों के खाने के लिए छह सौ इल्लियाँ रोज़ इकट्ठी करते हैं।

हम बड़े निराश थे। ये पंछी चुपचाप कितना कुछ करते हैं। पर सारे साधन होते हुए भी हम एक चूज़े का पेट नहीं भर पा रहे थे!

भोर होने में अभी देर थी। चूज़ा अपने डिब्बे से

चूज़ों के लिए प्रतिदिन इतनी इल्लियाँ इकट्ठी करना ज़रूरी है। हम अन्दाज़ ही लगा सकते हैं कि ये पंछी साल भर में कितने कीड़े-मकोड़े खत्म कर देते हैं।

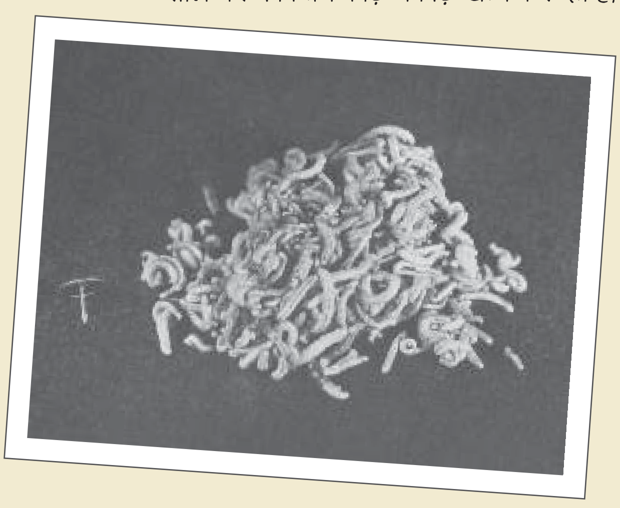

चूज़ाआँखें मूँदे डिब्बे की कनोट पर बैठा था।

निकलकर आँखें मूँदे कनोट पर बैठा था। अभी वह चूज़े से ज़्यादा एक छोटा फाख्ता जान पड़ रहा था। डिब्बे के अन्दर बीट भी पड़ी थी। अरे, दो दिनों से यह भूखा था तो बीट कहाँ से आई? फिर ध्यान में आया कि उसके पिछले सारे ठिकानों पर बीट बराबर पड़ी मिली। यानी फाख्तन उसे लगातार खाना खिला रही थी। और हमें पता ही नहीं चला था! इस ख्याल के साथ मेरे मन से चूज़े की ज़िम्मेदारी का एक बड़ा बोझ उतर गया।

पक्षियों का चहकना शुरू होने से पहले ही मैंने चूज़े को बगीचे में छोड़ दिया। फिर घर में आकर चाय बनाने और चाय की प्याली लेकर बगीचे की खिड़की तक पहुँचने में जितना समय बीता होगा! बाहर फाख्ता की हुमक के साथ उसके पंखों की नाज़ुक किंहुँक..किंहुँक.. सुनाई दी। मैंने परदा ज़रा-सा सरकाकर बाहर झाँका। चूज़ा फाख्तन माँ की चोंच में चोंच डाले पंख थरथरा रहा था और फाख्तन चोंच हिला-हिलाकर उसे दूध पिला रही थी।

मैरीकॉम की कहानी

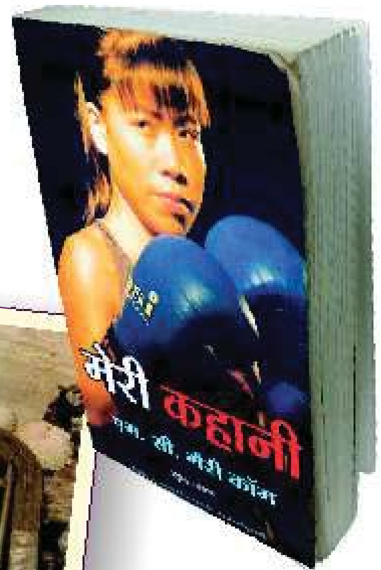

मेरे पैर तेज़ थे लेकिन घर पर और स्कूल में काम निपटाने की कोशिश करते हुए मेरे हाथ उनसे भी ज़्यादा तेज़ थे।

पुस्तक अंश में इस बार अपने देश की जानी-मानी मुक्केबाज़ मैरीकॉम की कहानी – मेरी कहानी – के बारे में पढ़ोगे। यह मैरीकॉम के संघर्ष की कहानी है। मैरीकॉम ने अन्तराष्ट्रीय स्तर की कई प्रतियोगिताएँ जीती हैं। पिछले ओलम्पिक में उन्होंने मुक्केबाज़ी में 51 किलोग्राम वर्ग में कांस्य पदक जीता। उनके इस रोमांचक सफर को पढ़ना एक अलग ही अनुभव होगा। इस बेहतरीन किताब को मंजुल पब्लिशिंग हाउस ने छापा है। इस किताब को मँगाने के लिए तुम इस पते पर लिख सकते हो –

मंजुल पब्लिशिंग हाउस, 7/23, ग्राउण्ड फ्लोर, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002 । किताब की कीमत है 195 रुपए। इस किताब के कुछेक अंश यहाँ तुम पढ़ सकते हो।

मेरी ज़िन्दगी एक कठिन, कठोर, ज़िन्दगी रही है और मेरी शुरुआत बेहद मामूली। लेकिन मेरी रत्ती भर इच्छा नहीं है कि वह इससे अलग होती। कम-से-कम आज पीछे मुड़कर देखते हुए। बिल्कुल नहीं। क्योंकि मुझे एहसास है कि जिन मुश्किलों का सामना मैंने अपने बढ़ने-बनने के वर्षों में किया, वे मेरी ताकत की बुनियाद हैं। मैं अपनी पृष्ठभूमि की वजह से मज़बूत हूँ। उन्हीं कठिनाइयों ने मुझे वह बनाया जो मैं आज हूँ। उन्होंने मुझे लगातार लड़ने की ताकत दी। सच तो यह है कि सबसे पहले उन्हीं ने मेरे अन्दर लड़ने की इच्छा पैदा की।....

◆

मेरा पूरे-का-पूरा दिन अफरा-तफरी में गुज़रता। मेरे पैर तेज़ थे लेकिन घर पर और स्कूल में काम निपटाने की कोशिश करते हुए मेरे हाथ उनसे भी ज़्यादा तेज़ थे। जब तक मैं स्कूल के लिए चलती, मेरी सहेलियाँ पहले ही वहाँ के रास्ते पर होतीं। मैं दौड़कर उनमें जा मिलती। वे मुझसे कहतीं, "चुंग्नैजांग, तुम हवा की तरह दौड़ती हो।" जो एकमात्र जूते मेरे माता-पिता की बिसात में थे, वे रबड़ के बने होते और स्कूल जाने-आने का लम्बा फासला पार करते हुए वे घिस जाते। लेकिन अनु चिमटा गर्म करके उनके फटे हुए हिस्से दबाकर उसे जोड़ने में माहिर हो गई। जब तक स्कूल का साल खत्म होता, रबड़ के जूते तार-तार हो चुके होते। मुझे इसकी परवाह नहीं थी कि मेरे जूतों में जोड़ लगे थे या मेरी वर्दी मुचड़ी हुई थी। मेरे लिए स्कूल अपने मित्रों के साथ खेलने और वह सब सीखने का मौका था जो मेरे माता-पिता मुझे नहीं सिखा सकते थे।...

◆

छुट्टियों में भी मनोरंजन का समय न मिलता। चूँकि मैं और मेरे भाई-बहन स्कूल से मुक्त होते, पिता हमें दूसरे काम और आदेश दे देते जैसे जलावन की लकड़ी इकट्ठी करना। चूँकि दूसरे अधिकतर परिवारों की तरह, जलावन की लकड़ी का भण्डार जमा करना हमारी बिसात के बाहर था, हमें बची हुई जलावन की लकड़ी के टुकड़े उठाने पड़ते। अपा (पिता) और हम तीनों बच्चे गाँव से लगभग आठ किलोमीटर दूर निंग्थी चिंग पहाड़ियों की तरफ दल बाँधकर चल देते। अपा ऊँचाई पर चढ़ जाते और हमें तलहटी में जलावन की उस लकड़ी को इकट्ठा करने देते जो वे ढलान पर फेंका करते। शाम तक हम काफी इकट्ठा कर लेते और सिर पर बोझा उठाए फिर वह सारा रास्ता पैदल चल कर वापस जाते। एक बार सिर्फ अपा और मैं ही जलावन की लकड़ी इकट्ठी करने के लिए गए हुए थे। वे पहाड़ी की ऊँचाई पर थे और मैं थोड़ा नीचे, गिरने से बचने के लिए एक पौधे को थामे खड़ी थी। लेकिन वह पौधा ज़मीन से पूरा उखड़ गया और मैं लुढ़कती-पुढ़कती एक गड्ढे में जा गिरी और बेहोश हो गई। जब मुझे होश आया, मैं चोट खाए और छिले हाथों-पैरों के साथ ज़मीन पर छाती के बल पड़ी हुई थी। जब अपा नीचे उतरे, मैंने उन्हें अपनी चोटें दिखाईं। उन्हें बहुत बुरा लगा और उन्होंने सबसे पहले यह जाँचा कि कोई हड्डी तो नहीं टूटी है। फिर थोड़ी देर आराम करने के बाद हम घर के लिए चल दिए। इस सबने मुझे उन चोटों और खरोंचों का आदी बना दिया जो मैं मुक्केबाज़ी के अपने जीवन के दौरान सहनेवाली थी।...

सभी चित्रः इन्टरनेट

◆

मैं हमेशा स्कूल की सालाना खेल-कूद प्रतियोगिताओं की भी बाट जोहती रहती थी और लगभग हर एकल प्रतियोगिता में भाग लेतीः 100 मीटर, 400 मीटर, लम्बी दौड़ आदि। फिर कम मुश्किल मुकाबले भी थे, जैसे चम्मच दौड़ (मुँह में चम्मच लिए दौड़ना जिस पर एक कँचा रखा होता) और सुई दौड़ (दौड़कर जाओ, सुई में धागा पिरो दो, वापस भागकर जाओ।) ज़्यादातर मुकाबले जिनमें मैं हिस्सा लेती, मैं पहला इनाम जीतकर आती। इनाम बहुत करके तश्तरियाँ, प्याले और टिफिन बॉक्स जैसे घरेलू सामान होते, जिस पर मेरे परिवार को बहुत खुशी होती। मेरा भाई टिफिन बॉक्स को लेकर बहुत उत्तेजित होता क्योंकि अब वह अपने दोस्तों की तरह स्कूल में चावल ले जा सकता था।....

◆

अपा ने आखिरकार खेलकूद के मेरे अन्दर के ज़बर्दस्त जोश को स्वीकार लिया। वे मुझे राष्ट्रीय खेल संस्थान द्वारा प्रशिक्षित कोच, निपामचा कुनम के पास मोइरांग ले गए। जोआ निपामचा दौड़ों और कूदों के कोच थे। उन्होंने बहुत-से युवा खिलाड़ियों को सिखाकर तैयार किया था। जब उन्होंने मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया तो मैं रोमांचित हो उठी। "क्या तुम सुबह जल्दी ही कसरत और प्रशिक्षण के लिए आओगी?" उन्होंने सख्ती से पूछा। मैंने उन्हें भरोसा दिलाया कि मैं भरसक कोशिश करूँगी। इस कोर्स में दाखिले का कोई पैसा नहीं लगता था। न साज़-सामान के लिए कोई खर्च वसूला जाता था मुझे बस इतना करना था कि वहाँ जाऊँ और बाकी खिलाड़ियों के साथ सीखूँ-समझूँ। अलबत्ता यह चिन्ता ज़रूर थी कि मेरे प्रशिक्षण को सहारा देने के लिए सन्तुलित भोजन नहीं था।...

◆

ज़्यादातर मुकाबले जिनमें मैं हिस्सा लेती, मैं इनाम में तश्तरियाँ, प्याले और टिफिन बॉक्स जैसे घरेलू सामान जीतकर आती।

और यही हुआ, दिन में चार बार मोहरांग और अपने गाँव के बीच साइकिल चलाना भारी साबित होने लगा। यह भी मेरे सामने साफ हो गया कि दौड़नेवाली प्रतियोगिताएँ मेरे मनानुकूल नहीं थीं। लगभग बीस दिन ही में मैंने हाथ खड़े कर दिए। पर उस छोटे-से अर्से में भी मैंने बहुत कुछ सीखा था। सबसे महत्वपूर्ण, कसरत के सही तरीके। मैंने शरीर को खींचना-तानना, ताकत और दम बढ़ानेवाली कसरतें और तेज़ी से अभ्यास करना सीखा। हम काफी दौड़ते भी थे। मेरे पहले कोच ने मेरे कौशल की तारीफ की और मुझे बताया कि अपनी प्रतिभा को सान पर चढ़ाने के लिए मुझे सही मार्गदर्शन की ज़रूरत थी। केन्द्र पर जाना बन्द करने के बाद भी मैंने घर पर कसरत का सिलसिला जारी रखा – इस आशा में कि कोई-न-कोई मौका ज़रूर आएगा। कभी-कभी मुझे हैरत होती है कि न तो सम्भावनाओं का अता-पता होते हुए और न मौकों की कोई सुन-गुन, मैं अपने जोश को कैसे कायम रख पाई।...

◆

ओजा ईबोम्चा (कोच) का इन्तज़ार करते हुए मैं लगभग रुआँसी हो गई थी।

आखिरकार वे बाहर निकले और मुझे बुलाया। "तुम मुक्केबाज़ी क्यों करना चाहती हो?" उस रोज़ मैंने कान में सोने की एक बाली पहनी हुई थी जो मेरी माँ अपनी बचत के पैसों से मेरे लिए खरीदकर लाई थीं। "तुम एक छोटी-सी, पतली-दुबली लड़की हो। अपनी सोने की बाली के साथ तुम मुक्केबाज़ जैसी लगती भी नहीं। मुक्केबाज़ी लड़कों के लिए है।" यह सुनकर मेरा चेहरा उतर गया होगा, क्योंकि उन्होंने जल्दी से मेरे माता-पिता के बारे में पूछा और यह भी कि वे क्या करते हैं और मैं इम्फाल में कहाँ रहती हूँ। उन्हें चिन्ता थी कि अगर मैं गाँव में रह रही होती तो उनके कड़े प्रशिक्षण कार्यक्रम का पालन नहीं कर पाऊँगीः सुबह छह से नौ बजे तक और शाम को तीन से छह बजे तक। चलते-चलते उनकी आखिरी ताकीद थी, "अगर तुम्हें सचमुच दिलचस्पी है तो तुम यहाँ शामिल हो सकती हो। लेकिन मैं रोज़ के कार्यक्रम और समय को लेकर बहुत कड़ाई बरतता हूँ। अगर तुम समय की पाबन्द न रह पाओ तो शामिल मत हो।"....

◆

मुझे अपने ही देश में हमेशा भारतीय नहीं समझा जाता था। हमारे चेहरे-मोहरे के कारण पूर्वोत्तर से आनेवाले लोगों पर अकसर भारत के दूसरे हिस्सों में छींटाकशी होती रहती है। हमें नेपाली या चिंकी कहा जाता है और लोग तरह-तरह के ताने कसते हैं जैसे चिंग-चिंग चौंग-चौंग। जिस देश में लोग सब किस्म की बोलियाँ बोलते हैं और उनके नाक-नक्शे भी किस्म-किस्म के होते हैं, हमारे साथ ऐसा बरताव क्यों किया जाता है? जब मैं कहती कि मैं मणिपुर से आई हूँ तो बहुत-से लोगों को यह तक पता नहीं होता था कि वह है कहाँ! सच कहें तो खुद मणिपुर में हम भारत के मध्यवर्ती मुख्य भाग के लोगों का हवाला "मयंग" यानी गैर-मणिपुरी कहकर देते हैं। यह भी मुझे उदास कर जाता है...।

मैं और मेरे भाई-बहन स्कूल से मुक्त होते, पिता हमें दूसरे काम और आदेश दे देते जैसे जलावन की लकड़ी इकट्ठी करना।

ताड़ का पेड़

अनमित्र राय

ताड़ के पेड़ के सिर पर रोज़
सुबह का सूरज उगता है
ताड़ के पेड़ के कुछ पीछे
पूनम का चाँद हँसी चुगता है

ताड़ के पेड़ के ऊपर
जब वह चमकीला तारा आता है
ताड़ के पेड़ की हवा में शाम को
छत पर मन लग जाता है

अमावस की गहरी रात में
बैठ ताड़ पे पैर झुलाती तारा
सिहर-सिहर आवाज़ें आतीं
बेचारा दिल काँपता हमारा

ताड़ के पेड़ के आसपास
सारी दुनिया के अँधेरों का बसेरा है
ताड़ के पेड़ पे हाँ, ताड़ के पेड़ पे
गहरी रात का डेरा है

बांग्ला से अनुवादः टुलटुल विश्वास

चित्रः शोभा घारे

मीठा सन्तरा

यायावर

मैं जब भी शिलांग में बिताए दिनों को याद करता हूँ तो मुझे बूढ़ी कांग याद आती है। वहाँ मैं मल्की हिल्स में रहता था। वह हमारे घर के पास ही छोटी-सी गुमटी में बैठी मौसमी फल बेचती थी। सन्तरे, केले, प्लम, पाइनेपल व उबले शकरकन्द, बिस्किट, चॉकलेट व पीपरमेंट। स्कूली बच्चे उसके नियमित ग्राहक थे।

मैं भी उधर से जाते-आते उस दुकान से कुछ न कुछ खरीदता। थोड़ी गपशप भी करता। कभी-कभी उसके साथ उसकी पोती भी बैठी होती।

एक दिन मैं घर लौटते समय उधर से गुज़रा तो उससे गपशप करने के लिए ठहर गया। मैंने उससे पूछा, "सन्तरा मीठा है?" उसने कहा, "हाँ, बहुत मीठा।" मगर जब मैंने वही सवाल दुहराया तो वह बोली "मीठा है तो क्यों नहीं मीठा होगा?" "कितनी चीनी डाली?" मैंने पूछा। वह समझ गई कि मैं मज़ाक कर रहा था। बोली "एक पव्वा।" मैंने कहा "एक पाव चीनी में तो ज़्यादा मीठा नहीं होगा!" वह हँसते हुए दो उँगलियाँ दिखाकर बोली "दो पव्वा।" "हाँ, तब तो ज़रूर मीठा होगा।" मैंने उससे कुछ सन्तरे खरीदे और घर चला आया।

कुछ समय बाद मैंने शिलांग छोड़ दिया और फिर बरसों मेरा उधर जाना नहीं हुआ।

लगभग बीस साल बाद मैं फिर शिलांग गया। मुझे उस बूढ़ी कांग की याद आई। उससे मिलने मैं फिर मल्की हिल्स पहुँचा। उसी जगह जहाँ वह छोटी-सी गुमटी में बैठी हुई फल बेचती थी। दुकान तो वही थी मगर वह वृद्धा कहीं नज़र नहीं आई। वहाँ एक युवती बैठी थी। उसके पास ही उसकी छोटी-सी लड़की भी बैठी थी। दुकान वैसी ही थी जैसी वह अब से बीस साल पहले हुआ करती थी।

मैंने उस कांग से उस बूढ़ी महिला के बारे में पूछा। पता चला वह उसकी नानी थी जो अब नहीं रही। कुछ समय गपशप कर चलते समय सन्तरा लेने के ख्याल से हमेशा की तरह उससे पूछा, "मीठा है?" वह बोली, "बहुत मीठा है।" मगर जब मैंने वही प्रश्न दुहराया तो वह थोड़ा नाराज़ होकर बोली "मीठा है तो क्यों नहीं मीठा होगा?" मैंने बरसों पुराना सवाल फिर उछाला "कितना चीनी डाला?" वह मुस्कराकर बोली, "एक पव्वा।" मैंने कहा "इतने में तो मीठा नहीं होगा।" वह हँसने लगी। फिर दो उँगलियाँ दिखाकर बोली, "दो पव्वा।" सुनकर मुझे भी हँसी आ गई। "तब तो ज़रूर मीठा होगा।" मैंने सन्तरे लिए और पैसे उसकी तरफ बढ़ा दिए। मगर उसने पैसा लेने से इंकार कर दिया।

शायद उसने मुझे पहचान लिया था। मैंने भी उस परी जैसी नन्ही-सी लड़की को पहचान लिया था जो अपनी नानी के पास बैठी होती थी।

चित्रः नरगिस शेख

मेरा नाम अब्दुल है

मोहम्मद अरशद खान

चित्रः अतनु राय

मेरा नाम अब्दुल है। लेकिन सभी मुझे मुन्ना कहकर पुकारते हैं। कभी-कभी मुझे इस बात पर बहुत गुस्सा आता है। अच्छा-खासा अब्दुल नाम है, पर लोगों को जाने अब्दुल कहने में क्या परेशानी होती है? बाहर वाले तो बाहर वाले, घर वाले भी मुन्ना ही कहते हैं। पर गलती तो घर वालों की ही है। जब घर वाले नाम बिगाड़ेंगे, तो क्या बाहर वाले चुप रहेंगे? अब घर में सबसे छोटा होने का यह मतलब तो नहीं कि मेरा नाम बिगाड़ा जाए। अगर स्कूल दाखिले की बात न आती तो शायद अब्दुल नाम भी न रखा जाता। और तो और, अगर कभी शिकायत करो तो कहेंगे- "सब तुम्हें प्यार करते हैं, इसलिए प्यार का नाम भी पुकारते हैं।"

मैं भी बड़ों को प्यार करता हूँ पर क्या उनका नाम बिगाड़ने की हिमाकत कर सकता हूँ? मेरे कितने सारे दोस्त हैं अनवर, नीरज, सौरभी, मनजीत। पर किसी के भी दो नाम नहीं हैं। घर में भी नीरज, बाहर भी नीरज। घर में भी अनवर बाहर भी अनवर।

अब आप ही बताएँ कोई अनजान आदमी "मुन्ना" नाम सुने तो क्या सोचेगा? यही न, कि होगा कोई साल-छह महीने का बच्चा। पैर-पैर चलना सीख रहा होगा। उसे क्या पता कि इस साल मैंने कक्षा आठ पास कर ली है। मैं बच्चा नहीं हूँ जो अम्मी-अब्बू की अँगुली पकड़कर चलूँ। अकेला स्कूल आता-जाता हूँ, वह भी भीड़ भरी बस में।

अभी पिछले हफ्ते की बात है। भाईजान मुझे स्कूल से बुलाने आए थे। उन्होंने टीचर जी से कहा कि मुन्ना को भेज दो। टीचर जी अब्दुल को तो जानते थे, पर यह मुन्ना कौन है? पूरा रजिस्टर छान मारा। परेशान होकर बोले, "यहाँ मुन्ना नाम का कोई लड़का नहीं पढ़ता, कहीं और पता कीजिए।"

"अब भाईजान को ख्याल आया कि अरे रे रे... भूल हो गई, रजिस्टर में तो अब्दुल ही नाम लिखा होगा।" उन्होंने फौरन टीचर को सारी बात बताई, तब कहीं जाकर मेरा पता मिला। खूब हँसी हुई। टीचर तो हँसते-हँसते दम नहीं ले रहे थे।

"मैं मारे शर्म के धरती में गड़ गया। इतना गुस्सा आया कि पूछो मत! घर आकर मैं खूब रोया। सारी बात जानकर अम्मी-अब्बू ने मुझे चुप कराया और घर भर को यह हिदायत दी कि कोई भी मुझे मुन्ना कहकर नहीं पुकारेगा। आप समझ रहे होंगे कि मेरी मुसीबत हल हो गई। लेकिन कहाँ? दो दिन तक अम्मी-अब्बू और अप्पी-भाईजान तक मुझे अब्दुल कहकर पुकारते रहे, पर तीसरे दिन से फिर वही ढाक के तीन पात। अब्दुल फिर से मुन्ना हो गया।"

"मैं परेशान हो चुका हूँ इस मुसीबत से। कोई हल होता नहीं दीख पड़ता। कभी-कभी तो सोचता हूँ, काश दुनिया में किसी का नाम ही न होता। सचमुच तब कितना अच्छा होता। सपनों में ऐसी ही एक दुनिया के बारे में सोचता रहता हूँ।"

माथापच्ची

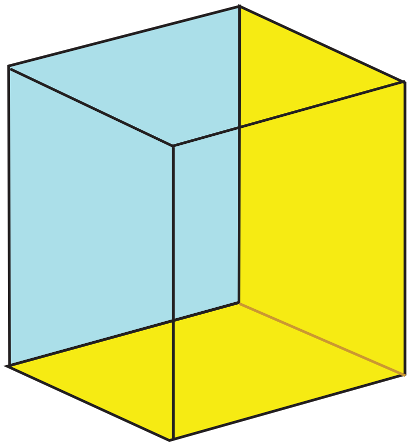

1 यहाँ लकड़ी का एक ब्लॉक है जिसकी एक दीवार को नीले रंग से और बाकी दीवारों को पीले रंग से रंगा गया है। नीले रंग की दीवार ब्लॉक की भीतरी दीवार है या बाहरी?

2 एक जिराफ अपनी ऊँचाई के आधे से 200 सेंटीमीटर ऊँचा है। इस हिसाब से जिराफ की ऊँचाई कितनी होनी चाहिए?

3 मेरे पास कुछ टॉफियाँ हैं। इन टॉफियों के आधे से एक ज़्यादा टॉफी मैंने सारा को दे दीं। बाकी बची टॉफियों के आधे से एक ज़्यादा टॉफी मैंने रेहान को दे दीं। आखिरी में मेरे पास केवल एक टॉफी बची। शुरू में मेरे पास कुल कितनी टॉफियाँ थीं?

4 अपने आसपास पाई जानेवाली ऐसी पाँच चिड़ियों के नाम बता सकते हो जिन्हें तुम सिर्फ उनकी आवाज़ सुनकर पहचान लोगे?

5 तुमने देखा होगा कि सूखे कागज़ की अपेक्षा गीले कागज़ को फाड़ना अधिक आसान होता है। क्यों?

जून की चित्र पहेली हल

पो	ख	र		छि	ल	का		श
ट			तो	प		ग	ट्ठ	र
ली	प	ना		क	मी	ज़		ब
		रं	गो	ली			रे	त
सा	रं	गी			ब	ण्ड	ल	
	गू		मु	ह	ल्ला		गा	य
गि	न	ती		थौ		छ	ड़ी	
ला		त	गा	ड़ी		प्प		गों
स	त्त	र			ब	र	ग	द

6 टीचर ने ज़ेन, हरमीत, एंडी और मेघा के वज़न नोट किए: 15 किलोग्राम, 25 किलोग्राम, 35 किलोग्राम और 45 किलोग्राम। पर जल्दी-जल्दी में वो यह लिखना भूल गईं कि किसका वज़न कितना है। हाँ, उन्होंने कुछ ऐसी बातें ज़रूर नोट करीं जिनके आधार पर तुम बता सकते हो कि किसका वज़न कितना है।

जैसे: 1. एंडी का वज़न हरमीत से ज़्यादा है।

2. ज़ेन का वज़न मेघा से कम है।

3. ज़ेन का वज़न हरमीत से 20 किलो ज़्यादा है।

4. मेघा का वज़न एंडी से ज़्यादा है।

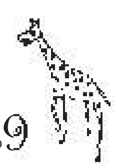

ताला सुधारनेवाला

राजेश जोशी

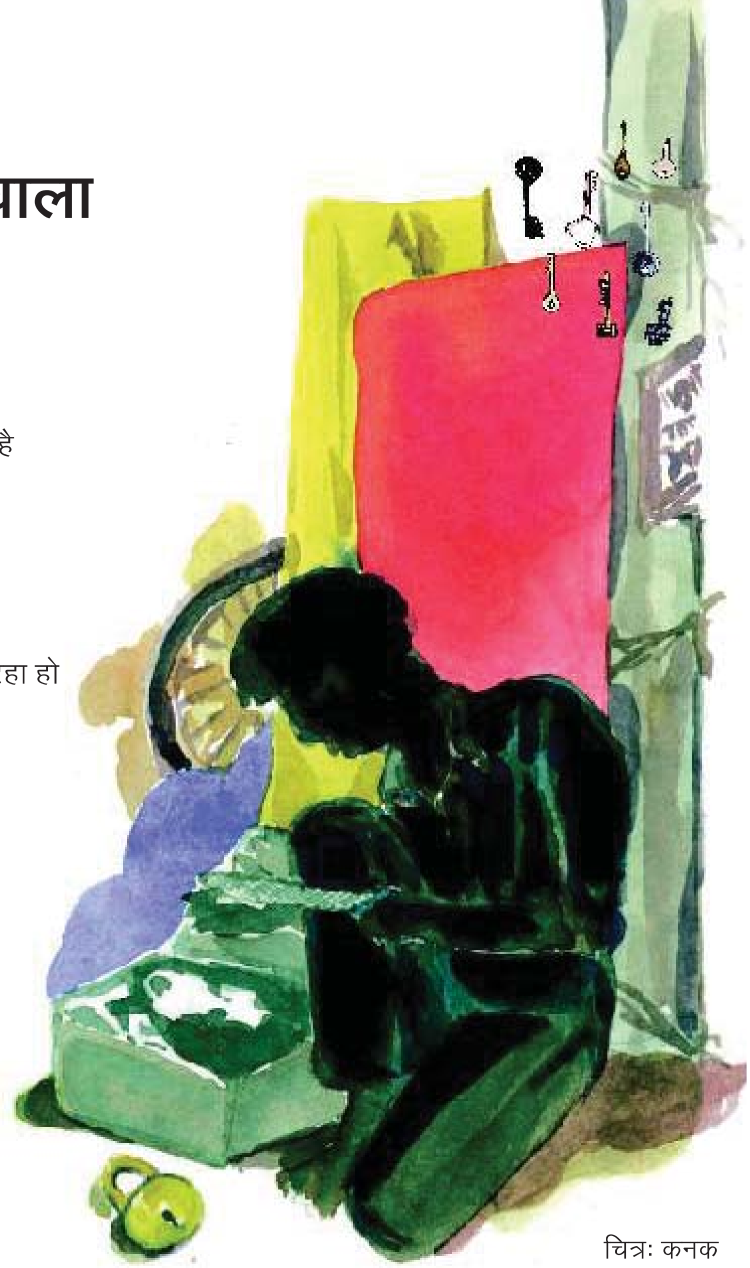

चित्रः कनक

वह एक पुराने लेकिन मज़बूत ताले की चाबी बनाने में लगा है
एक चाबी को वह ताले में लगाकर घुमाता है
फिर पास पड़े लकड़ी के कुन्दे पर रखकर
रेतनी से चाबी को घिसता है
कान के पास लाकर ताले में कुछ सुनता है
जैसे ताले के किसी गुप्त रहस्य को सुनने की कोशिश कर रहा हो

अब तो गिनती भी याद नहीं
कि कितने बन्द तालों को खोल चुका है वह
हम जो अकसर अपनी चाबियाँ कहीं खो आते हैं
हम नहीं जानते बन्द तालों को खोलने का हुनर
घबराए हुए से भटकते हैं उसे खोजते हुए
वह जैसे ही मिलता है एक राहत की साँस लेते हैं
वह एक पतले से सरिए में बँधी चाबियों का गुच्छा उठाता है

रेतनी और औज़ार लेकर चला आता है हमारे साथ
और ताले के सामने आकर खड़ा हो जाता है
कैसा भी अड़ियल ताला हो
वह उसे खोल देता है
वह हमारे ताले की नई चाबियाँ भी देता है
ऐसा कोई ताला नहीं जिससे उसने कभी हार मानी हो

पूछना चाहता था मैं उससे एक बात
कि तुम जीवन के उन अड़ियल तालों को खोलने का हुनर भी जानते हो
जिनकी चाबियाँ ढूँढने पर भी नहीं मिलती अकसर?
तुम जो किसी ताले को खोलने के बाद ठसक से मुस्कराते हो
बरसों से बन्द पड़े जीवन के किसी ताले की
चाबी बनाकर मुस्कराए हो कभी?

तुमने कभी खोला है किसी अँधेरे का ताला?

पता नहीं कैसे मन की बात भाँप जाता है वह
चाबियाँ सौंपते हुए धीरे-से मुस्कराता है
और चलते-चलते कहता है
ताला कोई भी हो, ऐसा नहीं जो खोला न जा सके
बस चाबी बिठाने का हुनर आना चाहिए।

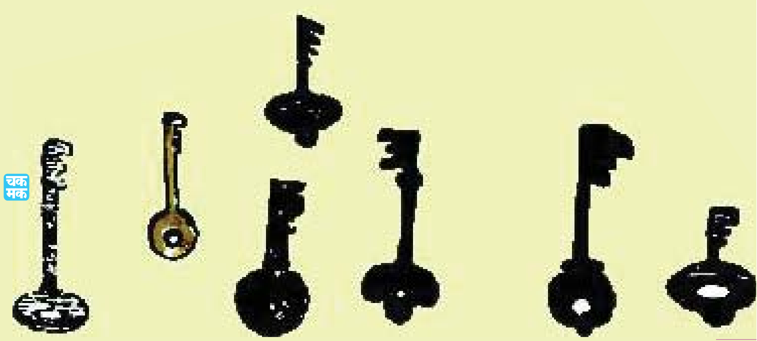

“ताला सुधारनेवाला” पर एक टिप्पणी

नरेश सक्सेना

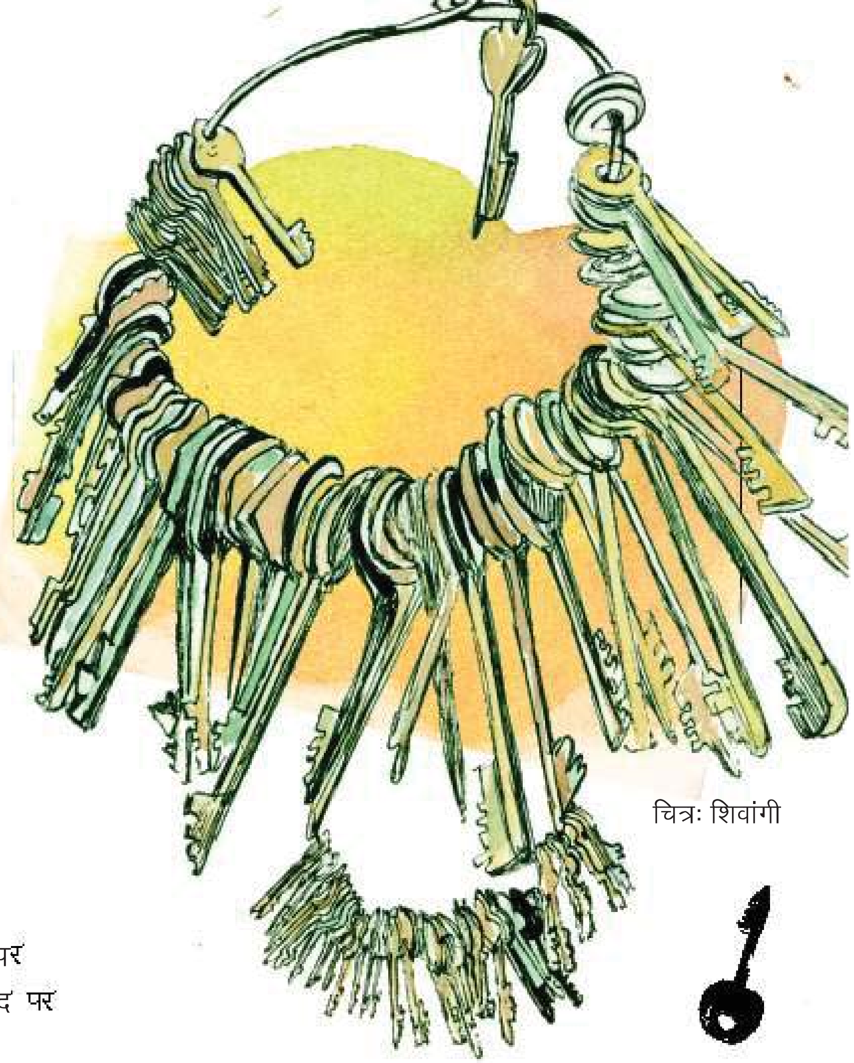

चित्रः शिवांगी

राजेश जोशी अकसर सरल और तथ्यात्मक वाक्यों से गहरी बातें कहते हैं। तथ्यात्मक वाक्य यानी दृश्यों और घटनाओं को उसी तरह लिख देना जैसी वे दिखाई दे रही हों। उनकी कलाकारी यह है कि – घटना के साधारण विवरण के समान्तर उस बात के दूसरे अर्थ भी ध्वनित होने लगते हैं। और जब किसी पंक्ति के एक से अनेक अर्थ अलग-अलग स्तरों पर चलने लगें तो वह पंक्ति, काव्य पंक्ति बन जाती है।

“ताला चाबी”, “चाबी का खोना” और “ताले की नई चाबी बनाने की क्रियाएँ” यह सभी शब्द यथार्थ भी हैं और प्रतीक भी। यह मुहावरा तो सुना ही होगा कि “तुम्हारे मुँह पर ताला क्यों पड़ा है?”। कितने ही रहस्यों पर आज तक ताले पड़े हुए हैं। आकाश पर पड़े तालों को वैज्ञानिकों ने खोला और नील आर्मस्ट्रॉन्ग ने चाँद पर पहला कदम रखा।

हमारी हर समस्या एक ताला है। ताले की चाबी खो जाए तो ताला खुद समस्या बन जाता है। फिर हम ताला सुधारनेवाले या उसकी चाबी बनानेवाले के पास जाते हैं। कविता के पहले पद में ताला सुधारनेवाला, एक नई चाबी बनाने की कोशिश में है। हर ताले में कुछ घूमनेवाले लीवर होते हैं और सुधारनेवाला कान के पास ताला लाकर चाबी घुमाता है और यह समझने की कोशिश करता है कि चाबी कहाँ टकरा रही है। ऊपर या नीचे। ताले के भीतर झाँककर तो वह देख नहीं सकता। इसलिए वह कानों से देखता है। इस तरह वह अपनी ऐन्द्रिक क्षमता का विस्तार करता है।

अगले पदों में कवि – हम जो अकसर अपनी चाबियाँ कहीं खो आते हैं और ऐसा कोई ताला नहीं जिससे उसने कभी हार मानी हो – जैसी पंक्तियों से हमें प्रेरित भी करता है और आगाह भी कि हम अपनी बनी बनाई चाबियाँ न खोएँ यानी लापरवाह होने की बजाय सजग और चौकन्ने रहें। साथ ही यह भी कि चाबी खो भी जाए यानी हम किसी समस्या में फँस भी जाएँ तो चुनौती का सामना करें, क्योंकि ऐसा कोई ताला नहीं जो खुल न सके यानी ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका हल न हो।

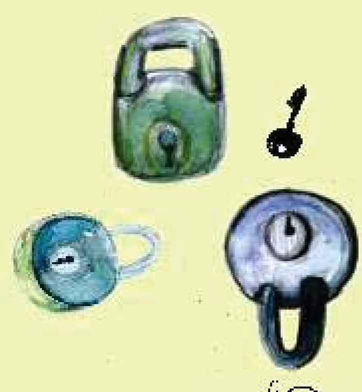

कवि का बयान

राजेश जोशी

हमारे आसपास के कई लोग बहुत-से छोटे-मोटे काम करते हैं। ऐसे काम जिन्हें हम साधारण कामों की श्रेणी में रखते हैं। हालाँकि उनके काम वक्त पड़ने पर किसी भी बड़े समझे जानेवाले काम से भी ज़्यादा ज़रूरी होते हैं। इस तरह का काम करनेवालों में कमाल का हुनर होता है। मज़ा यह है कि यह हुनर उन्होंने किसी स्कूल-कॉलेज से नहीं सीखा है। यह उन्होंने जीवन की ही पाठशाला में सीखा है – अपने पिता या माँ या चाचा या बड़े भाई से या किसी उस्ताद से।

ताला सुधारने का हुनर यानी चाबी के खो जाने पर बन्द ताले को खोलने और उसकी दूसरी चाबी बनाने का काम एक बहुत दिलचस्प काम है। इसे एक हुनरमन्द आदमी ही कर सकता है। कभी उसे गौर से देखो। वह किस तरह एक बन्द ताले को खोलता है! एक चाबी को उसमें बिठाता है, घुमाता है और बार-बार ताले के पास कान लगाकर कुछ सुनता है। लगता है जैसे ताले की कोई बात सुन रहा हो। तय है कि ताले के भीतर जो लीवर हैं उनमें चाबी के दाँत कहाँ टकरा रहे हैं, कहाँ अटक रहे हैं वह इसे सुनता है। उसके काम करने का ढंग मुझे बहुत आकर्षक लगता है। पंचर बनानेवाले, प्लम्बर, बिजलीसुधारनेवाले जैसे कई हुनरमन्द लोग होते हैं।

अगर हम सोचें तो जीवन में ऐसे कितने ताले हैं... यानी कितनी रुकावटें हैं जिन्हें पार करने, जिन्हें हल करने का हुनर हम नहीं जानते। हमें हर जगह एक ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत होती है जो इन समस्याओं से बाहर आने का रास्ता बता सके। धीरे-धीरे हम खुद ही उन समस्याओं से, रुकावटों से बाहर आने का रास्ता खोजना सीख जाते हैं। हर व्यक्ति के जीवन में ऐसे अनेक व्यवधान... अनेक रुकावटें होती हैं। ये ऐसे ताले हैं जिनकी चाबी बनाने और बैठाने का हुनर हमें सीखना होता है। कहा जा सकता है कि हर आदमी कहीं न कहीं ताला सुधारनेवाला होता है।

कविता का अन्तिम वाक्य यही कहता है कि ताला कोई भी हो ऐसा नहीं होता कि खोला न जा सके, बस चाबी बैठाने का हुनर आना चाहिए।

चित्रः कनक

ध्यान से पढ़ने पर इस कविता में हमें कवि की ऐसी एक-दो पंक्तियाँ भी मिलती हैं जो कवि की अपनी हैं, यानी घटना का विवरण नहीं है। इन्हीं पंक्तियों से कवि हमें गहरे अर्थों की ओर ले जाता है।

जैसे कवि का यह प्रश्न कि तुमने कभी खोला है – किसी अँधेरे का ताला?

अँधेरा एक धोखा है। अँधेरा अपने आप में कुछ नहीं होता। वह कोई पदार्थ या ऊर्जा नहीं है। वह रोशनी की अनुपस्थिति से पैदा होता है। अँधेरे से डरना नहीं चाहिए बल्कि रोशनी का उपाय करना चाहिए। इस तरह यह अँधेरे में रोशनी की तलाश की कविता हो जाती है।

अन्तिम पंक्ति है कि ताला कोई भी हो। ऐसा नहीं जो खोला न जा सके बस चाबी बिठाने का हुनर आना चाहिए।

जीवन में जगह-जगह हमें ताले पड़े मिलेंगे, समस्याएँ आएँगी – लेकिन यह कविता ध्यान रहे – चाबी बिठाने के हुनर की बात करती है। ताला तोड़ने की बात नहीं। चाबी बैठाने का यह हुनर जीवन जीने का हुनर है।

अमिनिचेची की बकरी

चित्रः कनक

हीबा के अब्दुल्ला, चौथी, सीएमसीएलपी स्कूल, केरल

अमिनिचेची (चेची यानी दीदी) बहुत सालों से हमारे पड़ोस में रहती हैं। उनके बच्चे नहीं हैं। वो अकेले ही रहती हैं। उनका एक अकेला साथी उनकी बकरी है। मुझे वो बहुत अच्छा लगती है। गर्मियों की छुट्टियों में जब स्कूल नहीं जाना होता है तो मैं रोज़ उनके घर जाती हूँ। साथ में कटहल की पत्तियाँ भी ले जाती हूँ। उन दिनों उसे खिलाना-पिलाना मेरे ही ज़िम्मे होता है। मैं जो भी उसे देती हूँ वो खुशी-खुशी खा लेती है। जब भी मैं उसे बुलाती हूँ वो दौड़ी चली आती है।

एक दिन अमिनिचेची ने बताया कि उनकी बकरी को बच्चा होनेवाला है। सुनते ही मेरा मन उछलने-कूदने लगा। सच तो यह है कि मुझे बकरी से ज़्यादा उसके बच्चे अच्छे लगते हैं। ओफ, उनको गोद में उठाने में, उनके साथ खेलने में कितना मज़ा आएगा!

उस दिन के बाद से तो सुबह उठते ही मैं सोचती कि बकरी के बच्चे हुए कि नहीं! अपने दोस्तों के साथ खेलते वक्त भी उसी-उसी का ख्याल आता रहता।

कुछ दिन बाद मैं अमिनिचेची के घर गई। देखा कि वो रो रही हैं। उनकी बकरी के बच्चे हुए थे पर वो मर गए। मुझे भी बहुत रोना आया। अम्मा-अप्पा ने सुना तो वो भी दुखी हो गए।

उस दिन के बाद से मुझसे अमिनिचेची के घर जाया ही नहीं जाता। चकमक

युरेका से साभार, मलयालम से अनुवादःअनु एलैक्ज़ेंडर

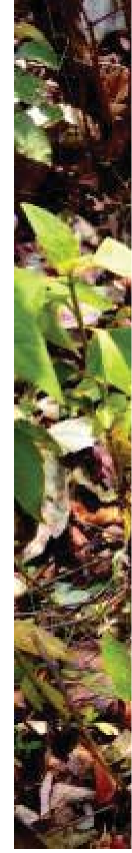

यह नियमगिरि पर्वतमाला से लगे जंगल के किनारे बसा गाँव है।

दाढ़ीवाले किसान

म्युरियल काकानी

पिछले दिनों मैंने एकलव्य की हाल ही में छपी किताब *रूखी-सुखी* पढ़ी। इसमें आधारशिला के बच्चों द्वारा अकाल पर जुटाए कुछ बेहद रोचक तथ्य हैं। आधारशिला मध्यप्रदेश के बड़वानी ज़िले के आदिवासी बच्चों का एक रिहायशी स्कूल है। खैर, इस किताब को पढ़ते हुए मुझे एक कोंध आदिवासी युवक जगन्नाथ की याद हो आई। जगन्नाथ से मैं उड़ीसा के रायगड़ा ज़िले के मुनीगुड़ा गाँव में मिली थी।

हम सड़क से दूर के एक गाँव जाने के लिए जंगल से गुज़र रहे थे। जगन्नाथ अकाल के अपने अनुभव बता रहा था, "...मुझे गर्मी का वो समय अब भी याद है...मैं तब कोई पाँच-छह बरस का रहा होऊँगा। गाँव में खाने के लिए कुछ भी नहीं बचा था। बीते साल की फसल का दाना-दाना खप चुका था। अनाज की कोठरी खाली पड़ी थी। मुझे याद है तब अपने माता-पिता के साथ जंगल जाना। पूरी गर्मी हम जंगल पर ही जिए...जंगली फल, कन्द-मूल, हरी पत्तियाँ, बीज, जंगली मोटे अनाज, मशरूम..."

फिर कुछ झिझक के साथ जगन्नाथ बोला, "और यह कितना अजीब है ना कि जब खेतों में कुछ नहीं बचता तो जंगल में देने के लिए कितना कुछ होता है। लगता है जैसे प्रकृति चाहती नहीं कि हम कभी भूखे रहें। इसलिए हम अपनी माँ की तरह जंगल का आदर करते हैं और इस बात का ख्याल रखते हैं कि उसे कोई नुकसान न हो।"

तब मैंने जगन्नाथ को एक वारली कहानी सुनाई। यह मैंने महाराष्ट्र के आदिवासी इलाके तलासरी में सुनी थी... "एक दफा गाँव में बहुत कम फसल हुई थी। गर्मियों के जाते-जाते तो खाने के लिए कुछ भी नहीं बचा था। तब लोगों ने एक बड़े किसान से मदद लेनी चाही पर उसने साफ मना कर दिया। आदिवासी इससे ज़रा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा, ठीक है। हम अपने दाढ़ीवाले किसान से मदद माँग लेते हैं।"

"अरे बढ़िया..!! तो चलो हम भी मिलते हैं अपने दाढ़ीवाले किसानों से..." कहते हुए जगन्नाथ ने मोटरसाइकिल में ज़ोर की किक मारी। हम दुलारीगाँव के रास्ते पर थे। यह नियमगिरि पर्वतमाला से लगे जंगल के किनारे बसा गाँव है।

झुरमुट इतना घना था कि भीतर जाना कतई सम्भव न था। उन महिलाओं ने वहाँ खोदना शुरू किया।

मेरे गाँव पहुँचते ही सब कुछ थम-सा गया। कुछ बूढ़ी औरतें तो भाग ही गईं। लोग थोड़े सशंकित थे...बाहर के लोग हमेशा बुरी खबर लाते हैं। अच्छा हुआ जो जगन्नाथ साथ था। उसने लोगों को भरोसा दिलाया कि मैं उसकी दोस्त हूँ और यहाँ उनके दाढ़ीवाले किसानों से मिलने आई हूँ। यह जानने के बाद औरतें मुस्कराने लगीं। उन्होंने मुझे एक कटोरी मण्डुआ दिया। यह कोंध आदिवासियों का मुख्य भोजन है। रागी के आटे को रात भर भिगोकर रखा जाता है। इससे उसमें खमीर उठता है। दूसरे दिन इसे चावल के साथ उबाला जाता है। खमीरवाले सभी भोजनों की तरह यह अच्छे बैक्टीरिया से भरपूर होता है। और सेहतमन्द होता है।

काम मुश्किल था। मगर जल्द ही वहाँ पहला दाढ़ीवाला किसान नज़र आया... एक लम्बी जटाओंवाला।

इस ज़बरदस्त मण्डुआ को पीने के बाद अब हमें घण्टों प्यास नहीं लगनेवाली थी। अब हमें दाढ़ीवाले बाबाओं से मिलना था। मैंने देखा कि महिलाएँ एक के पीछे एक होकर जंगल की तरफ जा रही थीं। मैं भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी। सभी के पास खोदने के लिए एक छड़ी और डलिया थी। कुछ देर के बाद वे एक झुरमुट के पास रुकीं। वो इतना घना था कि भीतर जाना कतई सम्भव न था। उन महिलाओं ने वहाँ खोदना शुरू किया। काम मुश्किल था। मगर जल्द ही वहाँ पहला दाढ़ीवाला किसान नज़र आया... एक लम्बी जटाओंवाली जड़। सही समझे तुम...दाढ़ीवाले किसान दरअसल प्रचुर मात्रा में पाए जानेवाले ये कन्द ही हैं। आदिवासी साल भर इन पर निर्भर रहते हैं। इस क्षेत्र में 265 किस्म के कन्द पाए जाते हैं।

सभी कोंध गाँवों की तरह यहाँ भी आमने-सामने घर बने हुए हैं। ईंटों से बने घर मिट्टी से लिपे हुए हैं। और एक-दूसरे से सटे हुए हैं। मवेशियों के तबेले और बकरियों के बाड़े लकड़ी के पटलों पर बने हैं ताकि उनका पेशाब पटलों के बीच से रिस जाए। इससे तबेलों को साफ करने की कोई खास ज़रूरत नहीं पड़ती। चूज़े यहाँ-वहाँ खुले में घूमते हैं।

जब सबकी डलियाँ भर गईं तब खोदे गए गड्ढों में कन्द के तने लगाकर उसे फिर से मिट्टी से भर दिया गया। ऐसा करने से कन्द की फसल यहाँ इस क्षेत्र में सालों तक उगाई जा सकती है।

गाँव वापस आकर कन्दों को धोया और फिर उबाला गया। अरे वाह..!! वह बहुत ही स्वादिष्ट था। जीवन में पहली बार मैंने कुछ ऐसा खाया था जो जंगली है, जिसे उगाया नहीं गया है, जो विषैली रासायनिक खाद और कीटनाशकों से दूषित नहीं है।

मुनिगुड़ा लौटते वक्त जगन्नाथ मुझे नीलगिरी (यूक्लिप्टस) के बागान दिखाने के लिए रुका। उसने बताया कि कुछ साल पहले आन्ध्रप्रदेश की एक पेपर कम्पनी ने काफी सस्ते दाम में यहाँ की काफी सारी ज़मीन खरीद ली थी। फिर प्राकृतिक जंगल को काटकर नीलगिरी के पेड़ लगा दिए गए। हम आदिवासी लोगों के लिए जो अपने भोजन के लिए 40 से 50 प्रतिशत तक जंगलों पर निर्भर हैं, जंगलों और जैवविविधता के इस नुकसान का मतलब है – भूख और अकाल। क्योंकि नीलगिरी के बागानों में कभी भी कन्द, फूल, बीज, मशरूम आदि नहीं उग पाएँगे।

"इसका मतलब यह है कि भूख और अकाल आदिवासियों के इतिहास में नई बात है?" मैंने पूछा

"हाँ..!!" वो बोला।

जगन्नाथ सही है। इससे पहले कभी आदिवासी भूख और अकाल से नहीं गुज़रे थे। अँग्रेज़ों के समय में रेलवे के आने से जंगलों का विनाश शुरू हुआ था। उस समय पहली बार जंगल में रहनेवालों को जंगल के उत्पादों से हाथ धोना पड़ा था। सदियों से यही जंगल उनकी पोषण सम्बन्धी ज़रूरतों का ख्याल रखता आया था।

जगन्नाथ ने बताया कि हाल ही में बीसमकटक, रायगड़ा में आयोजित एक आदिवासी मेला हुआ था। इसमें भारत के आदिवासी क्षेत्रों के 300 से ज़्यादा गाँवों से आए 1500 प्रकार के वन खाद्य पदार्थों का प्रदर्शन हुआ था। वन पदार्थों की यही विविधता हमेशा से सुनिश्चित करती आई है कि सूखे की स्थिति में भी भुखमरी न फैले।

आज विकास के नाम पर खनन के लिए जंगल कट रहे हैं, गहन कृषि हो रही है, नीलगिरी का प्लांटेशन आदि हो रहा है। इस सब के चलते आदिवासियों की खाद्य सुरक्षा कमतर होती जा रही है। बाहरी दुनिया से जंगलों को बचाने के लिए जगन्नाथ जी-जान से गाँव में जागरूकता फैलाने का काम कर रहा है।

भण्ड से भण्डारी

इब्बार रब्बी

मोहनजोदड़ों और हड़प्पा में मिट्टी के बड़े-बड़े घड़े मिले हैं, जिन्हें "मृदभाण्ड" अर्थात "मिट्टी के पात्र" कहते हैं। इन भाण्डों में वर्ष भर के लिए धान, गेहूँ आदि रखते थे। "भण्ड" या पात्र शब्द आज भी पंजाबी में प्रचलित है, वहाँ बर्तनों को भाण्डे कहते हैं, जो कई बार कर पाण्डे हो जाता है। 50 वर्ष पहले दिल्ली में पीतल के बर्तनों पर कलई करने वाले गली-गली घूमते थे। वे आवाज़ लगाते थे – पाण्डे कली करा लो पाण्डे। यहाँ "भ" का "प" में बदलना रोचक है। जहाँ ये "भण्ड" रखे जाते थे, उस स्थान को भण्डार कहने लगे। जहाँ भण्ड ही भण्ड भरे हों वहाँ हुआ भण्डार। बाद में भाण्ड में रखी जाने वाली वस्तु ही खुद भण्ड कहलाने लगी। जो व्यक्ति भण्ड या माल का हिसाब किताब रखता था, उसे भण्डारी कहने लगे। आज सरकारी भण्डार को मालखाना या तोशाखाना कहते हैं, भण्डारी को स्टोर कीपर! साठ साल पहले शादियाँ होटलों में नहीं घरों में होती थीं, घर पर ही व्यंजन और मिष्ठान बनते थे। जिस कमरे में मिठाइयाँ रखी जाती थीं, उस कमरे की निगरानी करने वाले को कहते थे "भण्डारी"। भण्ड की व्यवस्था करने वाला यह "भण्डारी" बाद में एक जाति में बदल गया।

किसानों का पसीना चमका
₹ 10 इस वर्ष अब तक हजार करोड़ से अधिक की राशि सीधे किसानों के बैंक खाते में
लगभग 10 लाख किसानों से
70,54,488 टन
गेहूं उपार्जित
25 मई 2014 तक
लगातार दूसरे वर्ष, देश में द्वितीय स्थान पर
ई-उपार्जन के जरिये सहकारी समितियों द्वारा संचालित 2980 खरीद केंद्रों पर खरीदी हुई और राशि सीधे किसानों के खातों में 7 दिनों में पहुंची.
मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान के खेती को लाभ का काम बनाने का संकल्प, अब प्रदेश में नयी खुशियाँ ला रहा है.
हमारा काम, श्रम का पूरा सम्मान
मध्यप्रदेश
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी
आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2014
D76034 दिनांक - 26.5.214

दर्पण की दुनिया

विवेक सोले

हम अपने आसपास कई तरह के दर्पण और दर्पण जैसी चमकीली सतह की वस्तुओं को देखते हैं जिनमें हम अपना प्रतिबिम्ब देख सकते हैं। शायद मनुष्य ने पहले-पहल अपने आप को पानी पर बननेवाले प्रतिबिम्ब में ही देखा होगा! 3 शताब्दी ईसा पूर्व में दर्पण चमकीली धातु (कांसे या चाँदी) से बने होते थे। 1ईस्वीं में पहले काँच के दर्पण बनने लगे। आर्कमिडीज़ (287 ईसा पूर्व से 212 ईसा पूर्व) ने तो दर्पणों की श्रृंखला की मदद से रोम के जहाज़ों में आग लगा दी थी। इतिहास में कुछ समय के लिए दर्पण गायब हो गए थे। क्योंकि माना जाता था कि दर्पण के अन्दर से कोई शैतान देख रहा है। 13 सदी में दर्पण फिर लौट आए। पुराने महलों, मन्दिरों में दर्पण का उपयोग बड़े ही कलात्मक ढंग से किया जाता था। ज़्यादातर महलों में एक शीश महल होता था। कुछ खास कोण पर रखने से एक ही वस्तु के कई प्रतिबिम्ब दिखने लगते हैं। इससे एक ज़बरदस्त प्रभाव पैदा होता है। कई छोटी दुकानों में दीवारों पर दर्पण लगाकर दुकान को बड़ा दिखाने की कोशिश की जाती है।

कुछ फिल्मों के दृश्य दर्पणों और उनसे बने प्रतिबिम्बों से यादगार बन गए है। *मुगलेआज़म* फिल्म के लिए लाहौर के शीश महल का नमूना बनाया गया था। इसमें कई छोटे-छोटे दर्पण इस्तेमाल किए गए थे। और हर दर्पण में नाचती हुई मधुबाला दिख रही थी।

दर्पण और प्रतिबिम्ब

दर्पण में दिखनेवाला प्रतिबिम्ब बिलकुल हमारे जैसा ही दिखता है लेकिन उसमें दायाँ और बायाँ उलट-पलट हो जाता है (यानी lateral inversion)। अगर तुम दाएँ हाथ से लिखते हो तो प्रतिबिम्ब बाएँ हाथ से लिखता दिखेगा। प्रतिबिम्ब का यह उलटना थोड़ा-सा अलग तरह का होता है। अगर तुम अपने दाएँ हाथ में एक R और बाएँ हाथ में L अक्षर लिखा हुआ कार्ड पकड़ो तो प्रतिबिम्ब में भी कार्ड उन्हीं हाथों में रहेंगे। वे बदल नहीं जाएँगे। तो फिर असल में होता क्या है? दर्पण असल में प्रतिबिम्ब को अन्दर से बाहर पलट देता है। जैसे अगर हम हाथ दस्ताने को पलटकर अन्दर वाला हिस्सा बाहर और बाहर वाला हिस्सा अन्दर कर दें तो हम सीधे हाथ के दस्ताने को उलटे हाथ में पहन सकते हैं। कल्पना करो कि तुम दर्पण की तरफ उत्तर दिशा में मुँह करके खड़े हो। तुम्हारा दायाँ हाथ पूर्व दिशा में होगा और बायाँ हाथ पश्चिम के तरफ। सर ऊपर और पैर नीचे। प्रतिबिम्ब में भी दायाँ, बायाँ, ऊपर और नीचे वास्तविक दिशा में ही होंगे लेकिन प्रतिबिम्ब उत्तर की जगह दक्षिण दिशा में देख रहा होगा। यह एक भ्रम है कि प्रतिबिम्ब दक्षिण दिशा में देख रहा है, वास्तव में तो वह उत्तर दिशा में ही देख रहा है (चित्र देखो)।

फोटोः विवेक सोले

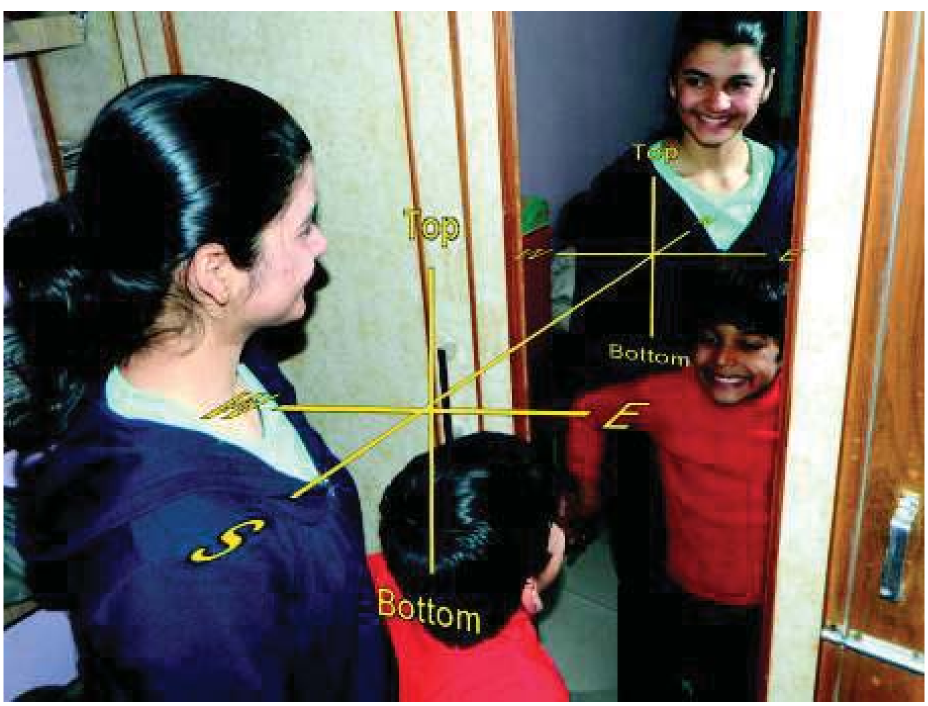

दर्पण का रंग क्या है?

इसके जवाब में कोई कह सकता है कि चाँदी जैसा या भूरा। असल में किसी भी वस्तु का रंग वह होता है जिस रंग की तरंग को वह उत्सर्जित करता है या नहीं सोखता है। यानी नीबू का रंग पीला इसलिए दीखता है क्योंकि वह पीले रंग की रोशनी को नहीं सोखता। जब वस्तु किसी भी रंग की तरंग को नहीं सोखती और सभी तरंगों को परावर्तित (reflect) करती है तो वह सफेद दिखती है। दर्पण भी सभी तरंगों को परावर्तित करता है। तो फिर क्या दर्पण सफेद होता है? दरअसल दर्पण तरंगों को परावर्तित करते समय उन्हें छितराता (diffuse) नहीं है। वह एक तरह का चतुर सफेद रंग का होता है। यह तो हुई सबसे उत्तम (Perfect) दर्पण की बात। आम तौर पर सभी दर्पण दोषपूर्ण होते हैं और हलका-सा हरा रंग परावर्तित करते हैं। अगर हम दो दर्पणों को आमने-सामने रखेंगे तो उसमें प्रतिबिम्बों की एक अनन्त कतार दिखेगी। पीछे-पीछे के प्रतिबिम्ब हलके हरे रंग के दिखेंगे। तो फिर यह कह सकते हैं कि दर्पण का रंग हरा होता है।

एक तरफा दर्पण

एक तरफा दर्पण रोशनी के कुछ हिस्से को आर-पार जाने देता है और कुछ हिस्सा परावर्तित कर देता है। (सामान्य काँच लगभग 90 प्रतिशत रोशनी को आरपार जाने देता है और 10 प्रतिशत को परावर्तित करता है। और एक तरफा काँच 50 प्रतिशत रोशनी को परावर्तित करता है और 50 प्रतिशत को आरपार जाने देता है।) ऐसे में जब एक ओर रोशनी हो और एक ओर अँधेरा हो तो अँधेरे वाले हिस्से से उजाले वाले हिस्से को आसानी से देखा जा सकता है। लेकिन उजाले वाले हिस्से से अँधेरे वाले हिस्से को नहीं। ऐसा आंशिक दर्पण बनाने के लिए काँच पर एक धातु की बहुत ही पतली पारदर्शी परत चढ़ाई जाती है। ऐसे दर्पण अधिकतर ऑफिस की खिड़कियों में, सिक्यूरिटी कक्ष या वाहन आदि में लगाए जाते हैं।

दर्पणों को कुछ खास कोण पर रखने से एक ही वस्तु के कई प्रतिबिम्ब दिखने लगते हैं। इससे एक ज़बरदस्त प्रभाव पैदा होता है। मुगलेआज़म का वह यादगार दृश्य।

दो दर्पणों को आमने-सामने रखेंगे तो उसमें प्रतिबिम्बों की एक अनन्त कतार दिखेगी। पीछे-पीछे के प्रतिबिम्ब हलके हरे रंग के दिखेंगे।

दर्पण की भीतरी दुनिया

चलो, अब थोड़ा दर्पण की दुनिया के अन्दर घूम कर आते हैं! क्या हम इसमें रह पाएँगे? यह दुनिया अपनी असली दुनिया का प्रतिबिम्ब है। यहाँ ज़्यादातर लोग उलटे हाथ से लिखते हैं। यहाँ स्क्रू घड़ी की उलटी दिशा (anticlockwise) में कसे जाते हैं। और तो और घड़ी भी घड़ी की उलटी दिशा (anticlockwise) में चलती है। ट्राफिक सड़क की दाईं ओर चलता है। यहाँ तक तो कोई परेशानी नहीं। कई देशों में ट्राफिक दाईं ओर ही चलता है। कुछ विशेष मशीनों में उलटी दिशा के स्क्रू भी काम आते हैं। इस दुनिया में टीवी देखने का भी मज़ा लिया जा सकता है – बस अक्षर पढ़ने में थोड़ी परेशानी होगी क्योंकि सब कुछ (mirror script) में लिखा होगा। ऐसी लिखाई (mirror script) एम्बुलेंस के सामने लिखी होती है जहाँ बड़े अक्षरों में AMBULANCE लिखा होता है। आगे चलने वाले वाहन चालकों को अपने रियर व्यू मिरर में यह सीधा लिखा हुआ दिखता है और वे एम्बुलेंस को रास्ता दे देते हैं। मिरर स्क्रिप्ट में लिखना और पढ़ना भी सीखा जा सकता है। लेओनार्दो दा विन्ची अपने निजी नोट्स मिरर स्क्रिप्ट में ही लिखते थे। वैसे भी उलटे हाथ से दाएँ से बाएँ लिखना ज़्यादा आसान होता है। माटीओ ज़ाकालोनी (1574-1630) ने तो एक पूरी पुस्तक ही मिरर स्क्रिप्ट में लिखी थी।

लेओनार्दो दा विन्ची के निजी नोट्स

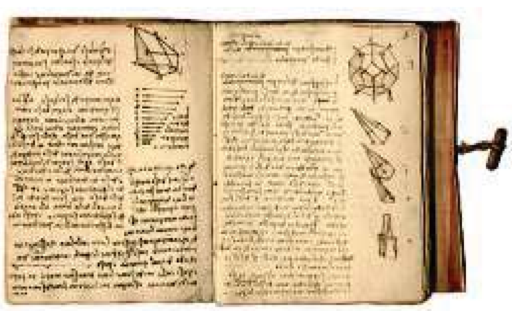

हरी चीज़ें लाल रोशनी में
काली नज़र आती हैं
दरअसल चीज़ें खुद कुछ कम शातिर नहीं होतीं
वे उन रंगों की नहीं दिखतीं
जिन्हें सोख लेती हैं
बल्कि उन रंगों की दिखाई देती हैं
जिन्हें लौटा रही होती हैं
वे हमेशा अपनी अस्वीकृति के रंग ही दिखाती हैं

–कवि नरेश सक्सेना की कविता
"देखता हूँ अँधेरे में अँधेरा" का एक अंश

तुम भी कोशिश करो मिरर स्क्रिप्ट में कुछ लिखने की...

अब एक सबसे महत्वपूर्ण बात। क्या हम दर्पण की दुनिया का खाना खा सकते हैं? यह सवाल उतना साधारण नहीं है जितना महसूस हो रहा है। हमारे खाने का मुख्य हिस्सा प्रोटीन होता है। प्रोटीन एमिनो एसिड की श्रृंखलाओं से बनता है। हमारा शरीर एक ही तरह के एमिनो एसिड को पचा सकता है उसके प्रतिबिम्ब को नहीं। ऐसा खाना हमारे लिए अपौष्टिक ही नहीं ज़हरीला भी होगा। यानी हम दर्पण की दुनिया का खाना नहीं खा सकते। वैसे ही जैसे हम दाएँ पैर में बाएँ पैर का जूता नहीं पहन सकते। यह बात हमारे ऊपर ही नहीं लागू होती। पृथ्वी पर रहने वाले सारे जीव-जन्तु, बैक्टीरिया से ले कर ब्लू व्हेल तक, सभी सिर्फ एक ही तरह के एमिनो एसिड पचा सकते हैं उसके दर्पण प्रतिबिम्ब को नहीं।

जिस तरह से शुरू में किसी ने एक घड़ी बनाई जो घड़ी की दिशा में चलती थी और उसके बाद से सारी घड़ियाँ उसी दिशा में चलने वाली बनती गईं। उसी तरह करोड़ों साल पहले जीवन की उत्पत्ति में अनजाने में प्रकृति ने एक तरह के एमिनो एसिड का उपयोग करना शुरू किया, क्रमिक विकास के चलते उस सूक्ष्मजीव से विकसित होने वाली सभी प्रजातियों ने ऐसा ही किया। यह इस बात का एक ठोस सबूत है कि पृथ्वी पर जीवन का स्रोत एक ही है (common ancestry)।

दर्पण की दुनिया के उलटने पर कई दिलचस्प कहानियाँ और विज्ञान कथाएँ लिखी गई हैं। *ऐलिस इन वन्डरलैंड* में लुइस कैरोल ऐलिस और उसकी बिल्ली से दर्पण की दुनिया की छानबीन कराते हैं। ज़ाहिर है कि उस समय लेखक को अणुओं की संरचना के बारे में कुछ खास जानकारी तो नहीं रही होगी लेकिन फिर भी एक जगह एलिस अपनी बिल्ली से कहती है, "शायद दर्पण की दुनिया का दूध तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है।"

Spock Must Die! में जेम्स ब्लिश लिखते हैं – ट्रांसपोर्टर की गड़बड़ी के कारण मिस्टर स्पोक (स्टार ट्रैक का एक प्रसिद्ध चरित्र) की एक दर्पण नकल तैयार हो जाती है। और वह खुद को दर्पण की दुनिया में पाता है जहाँ वो कुछ भी खा नहीं पाता है। वह वहाँ के रसायन विज्ञान को समझकर खाने योग्य कुछ बनाने की कोशिश करता है। आइज़क असिमोव की किताब *The Left Hand of the Electron* भी इसी बारे में ही है। चकमक

अगले अंकों में इस विषय पर और लेख भी दिए जाएँगे।
अगर इस लेख को पढ़कर तुम्हारे मन में कोई सवाल उठ रहे हैं तो हमें पत्र लिख सकते हो या chakmak@eklavya.in पर ई मेल कर सकते हो।

बोलीरंगोली

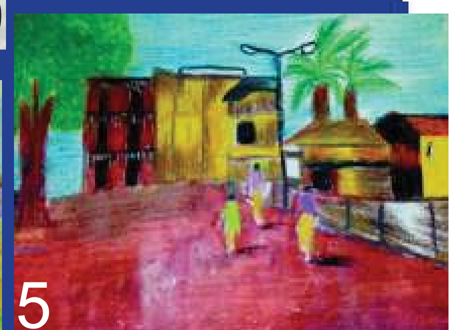

चुनिंदा दस चित्र

1 वसुंधरा अरोरा, दसवीं, दिल्ली
2 दिव्यांशी, सातवीं, गुड़गाँव
3 दुष्यंत, नवीं, मंज़िल, दिल्ली
4 जमाली लसकर, पाँचवीं, शिलांग, मेघालय
5 सुष्मिता राय, ग्यारह वर्ष, शिलांग, मेघालय
6 संगीता कुमारी, किलकारी बालभवन, पटना
7 माया, सातवीं, बाल निकेतन, भोपाल
8 कैथवजीत, पाँचवीं, गुड़गाँव
9 केशव कुशवाहा, सातवीं, कर्त्तव्य, आगरा
10 पूर्वाली पॉल, नौ वर्ष, शिलांग, मेघालय

कैनवास के ऊपर काले कलर से, काला मतलब जिसमें सब कलर शामिल हो सकते हैं, उससे चालू किया। मुझे ठीक भी लगा। क्योंकि मैं निरंतर काम की खोज में रहता हूँ। एक दफे मैं सड़क पर चला जा रहा था। बारिश के दिन थे। एक कार चली जा रही थी। कार से पैट्रोल चू रहा था। पैट्रोल पानी पर पड़ता है तो पानी के ऊपर तैरा करता है। आपने देखा है? उस पैटर्न से मैंने अपनी पूरी स्टाइल विकसित की। जो आज मैं पेंट करता हूँ।

- चित्रकार अम्बादास खोबरागड़े

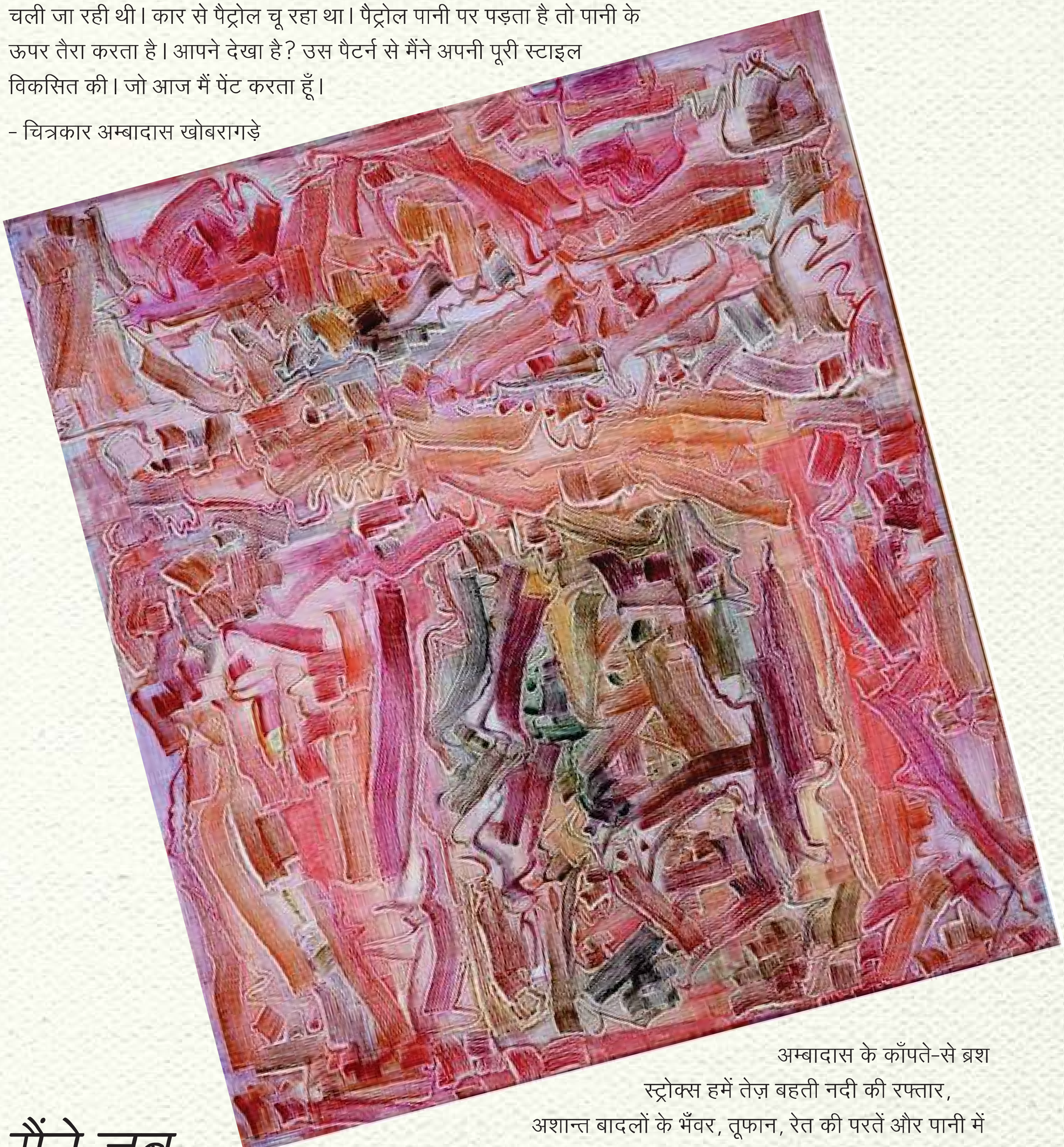

मैंने जब पेंटिंग चालू की ...

अम्बादास के काँपते-से ब्रश स्ट्रोक्स हमें तेज़ बहती नदी की रफ्तार, अशान्त बादलों के भँवर, तूफान, रेत की परतें और पानी में तिरते तेल में कैद सतरंगी प्रकाश की याद दिला जाते हैं। इस पेंटिंग में बॉर्डर नहीं हैं। लगता है जैसे वो कभी न खत्म होनेवाला रंग और लहरों का अन्तहीन बहाव हो।

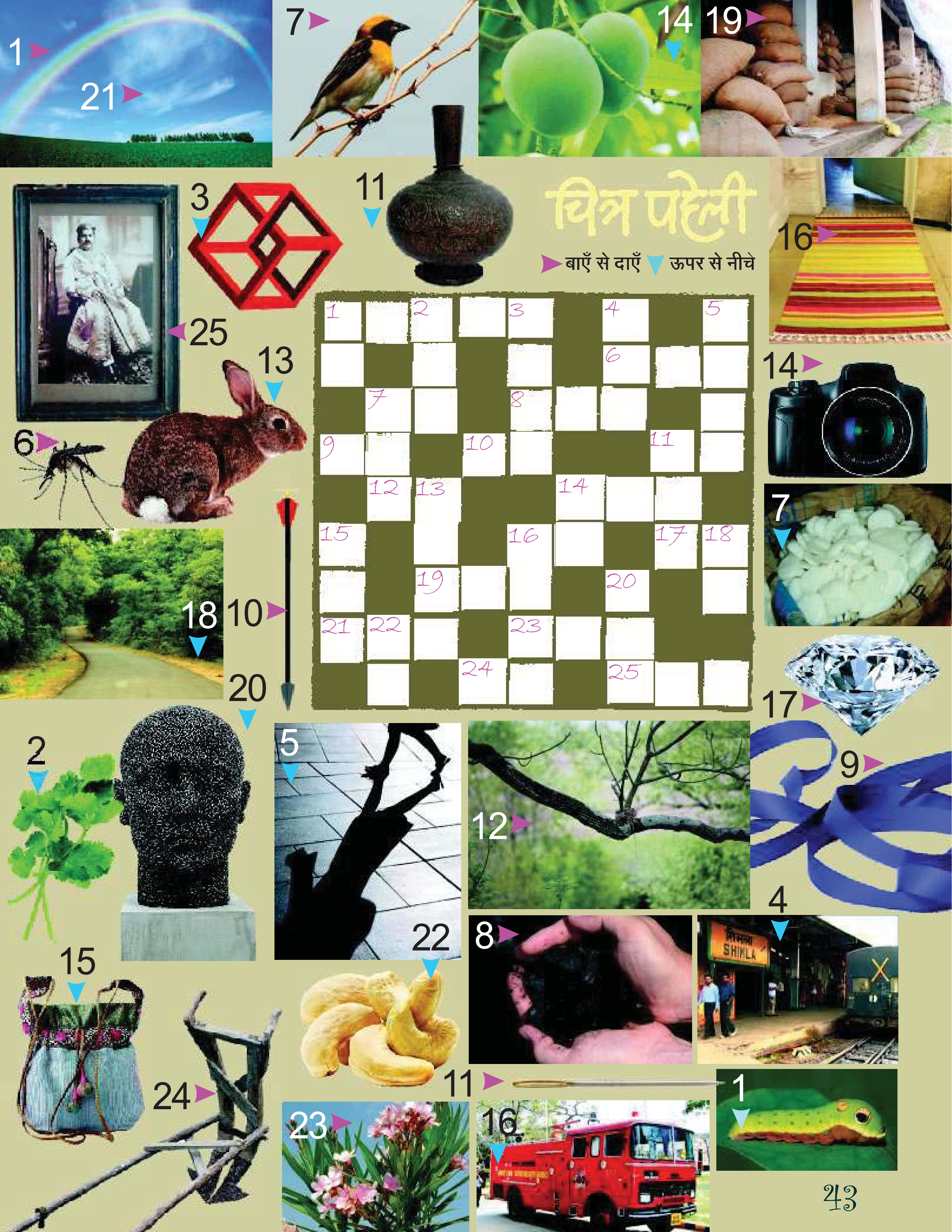
चित्र पहेली
बाएँ से दाएँ ऊपर से नीचे
1 2 3 4 5
6
7 8
9 10 11
12 13 14
15 16 17 18
19 20
21 22 23
24 25
SHIMLA

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2012-14

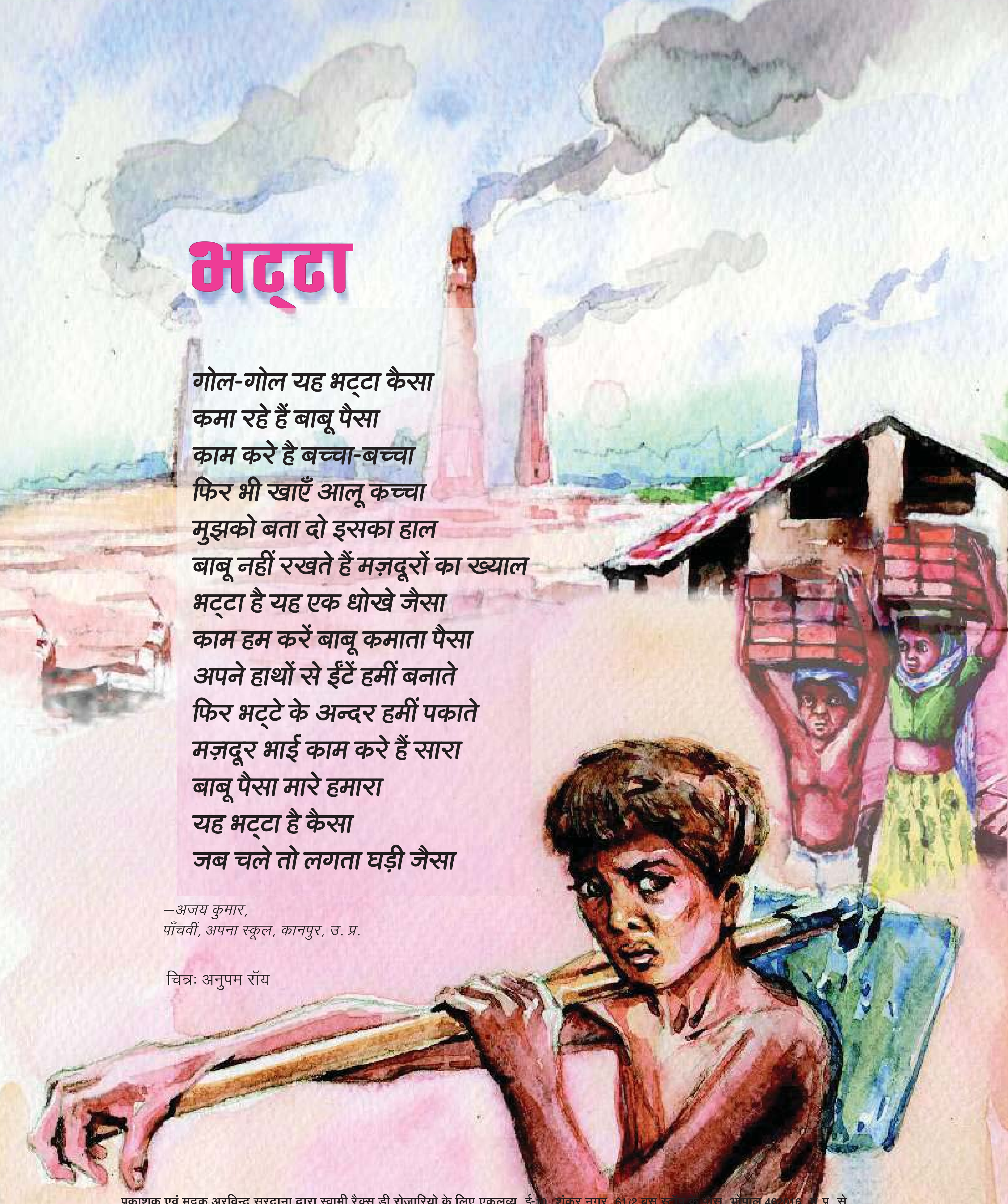

भट्टा

गोल-गोल यह भट्टा कैसा
कमा रहे हैं बाबू पैसा
काम करे है बच्चा-बच्चा
फिर भी खाएँ आलू कच्चा
मुझको बता दो इसका हाल
बाबू नहीं रखते हैं मज़दूरों का ख्याल
भट्टा है यह एक धोखे जैसा
काम हम करें बाबू कमाता पैसा
अपने हाथों से ईंटें हमीं बनाते
फिर भट्टे के अन्दर हमीं पकाते
मज़दूर भाई काम करे हैं सारा
बाबू पैसा मारे हमारा
यह भट्टा है कैसा
जब चले तो लगता घड़ी जैसा

—अजय कुमार,
पाँचवीं, अपना स्कूल, कानपुर, उ. प्र.

चित्रः अनुपम रॉय

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल